अक्टूबर
2024

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 88 | अंक – 10 | प्रति – ₹ 25 | ₹ – 300 वार्षिक

14 भक्तवत्सल हैं भगवान
27 आदर्श की पराकाष्ठा भगवान राम
41 हिमालय के प्रति संवेदनशील रवैया
64

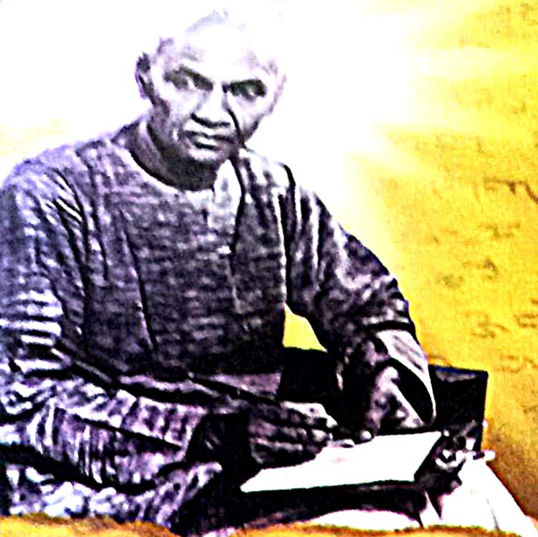

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

अक्टूबर-1949

(पृष्ठ - 3)

ब्रह्म की सर्वव्यापकता

यह ब्रह्म पूर्ण से भी पूर्ण है। इसलिए जिस वस्तु में यह पूर्ण ब्रह्म समाविष्ट रहेगा, वह वस्तु भी पूर्ण रहेगी। इसका अनुभव सिर्फ चेतन पदार्थों में ही नहीं करना है। ये तो संसार के जड़ पदार्थों में भी उसी प्रकार ओत-प्रोत है , जिस प्रकार चेतन पदार्थों में। इसलिए जड़ और चेतन दोनों में ही उनकी पूर्णता का साक्षात्कार करना होगा। लेकिन हमारी ये स्थूल आँखें इस भूमंडल के चप्पे-चप्पे को खोज डालें , तब भी ब्रह्म का दर्शन नहीं कर पातीं। तोते की तरह भगवान को रट लेने से तो किसी भी जन्म में भगवान का दर्शन नहीं हो सकता। स्वर्ग की पवित्र तेजोमय किरण से जिस दिन हमारी स्थूल आँखें प्रकाश प्राप्त कर लेंगी, मायारूपी अंधकार से निकल भागेंगी, जिस दिन ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश से हमारे मन से शंकाएँ और भ्रम दूर हो जाएँगे। उसी दिन हम धन्य तथा कृतार्थ हो जाएँगे। उस दिन संसार को मोहित करने वाला भगवान का सत्- चित् -आनंदमय रूप देखकर उसका दर्शन करके हम धन्य होंगे।

— योगिराज अरविंद

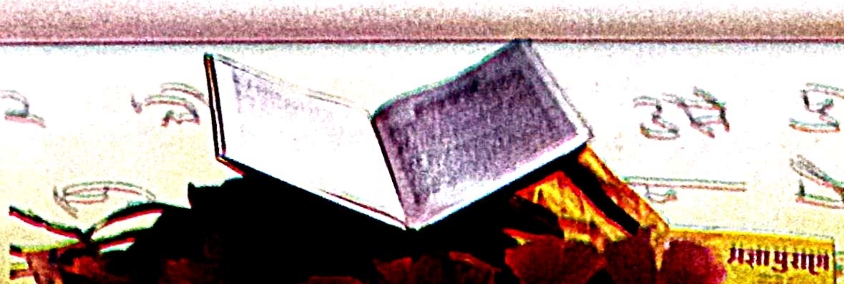

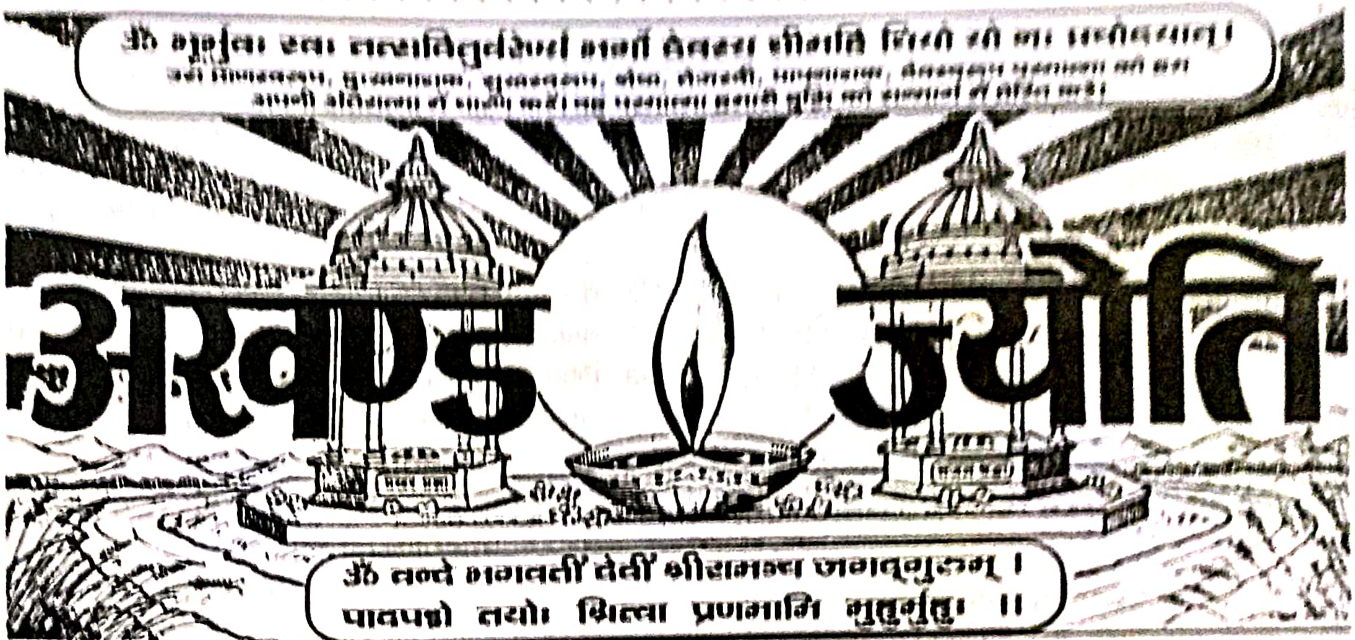

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	88
अंक	:	10
अक्टूबर	:	2024
आश्विन-कार्तिक	:	2081
प्रकाशन तिथि	:	01.09.2024
वार्षिक चंदा		
भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

राष्ट्र-आराधन

राष्ट्र-आराधन ही सच्ची राष्ट्रीय भावना है। यही सघन होकर राष्ट्रभक्ति बनती है और जब राष्ट्रभक्ति-गुरुभक्ति-ईश्वरभक्ति मिलकर एक हो जाते हैं, तभी साधना समर्थ बनती है। स्वाधीनता के लिए भारतमाता सिसकती रहे, पराधीनता की पीड़ा से वह परेशान रहे—यह युगदेवता को स्वीकार न था। यह भला कैसे संभव होता कि अपनी भारतमाता की छाती चीरकर राक्षस खून पीते रहें और वे एकांत कोठरी में बैठे रहें ?

राष्ट्र की वेदना ने उनको विकल किया, देश की व्यथा से वे व्यथित हुए। उनके मन की इन तरंगों ने परम गुरु की चेतना को स्पर्श किया। तब परम गुरु का आदेश आया कि तुम्हारी समस्त साधना को तीन चरणों में इसीलिए बाँटा गया है। प्रत्येक चरण का विधान भी इसीलिए अलग रखा है। इस चरण की अवधि में राष्ट्र-आराधन—युगधर्म बन गया है। इसलिए इस अवधि में अखंड दीप की सार-सँभाल तुम्हारी धर्मपत्नी करेंगी। उनके द्वारा कुछ प्रतीकात्मक जप भी होता रहेगा।

तुम्हारे लिए जप का विधान अब मातृका माला से होगा। न कर माला-न गुँथी हुई कोई अन्य माला। इस कठिन अवधि में मातृका माला ही श्रेष्ठ है। इसके लिए सूक्ष्मचेतना और स्थूलशरीर को जोड़ने वाले मातृका केंद्रों के दर्शन कराए गए। महापुरश्चरण का उच्च आध्यात्मिक अध्याय आरंभ हुआ, जो स्वाधीनता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेने-आसनसोल कारावास की अवधि में बना रहा। इस अवधि में गायत्री महापुरश्चरण की साधना न केवल अबाधित रही; बल्कि अधिक, और अधिक ऊर्जा का स्रोत बन गई। साथ ही राष्ट्र-आराधन का युगधर्म भी निभाया जाता रहा। युगदेवता की साधना के नवविधान में सभी असंभव संभव होते रहे। □

गायत्री ज्ञान मन्दिर
9/181, इन्दिरा नगर, लखनऊ
मो:- 9451387585, 9335902617

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- राष्ट्र-आराधन 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  बंद करो खरचीली शादी 5
- दृढ़ भक्ति से हुई ध्रुव को भगवत्प्राप्ति 7
- वाक्‌शक्ति का सदुपयोग किया जाए 11
- भक्तवत्सल हैं भगवान 14
- अमूल्य राष्ट्रीय संपदा हैं नदियाँ 18
- प्रभुकृपा के पात्र बनें 21
- **पर्व विशेष—शारदीय नवरात्र**
  शक्ति-साधना का पर्व—नवरात्र 24
- क्या है त्याग? 26
- आदर्श की पराकाष्ठा भगवान राम 27
- महान गांधीवादी और देशभक्त-महादेव देसाई 30
- यज्ञ : एक योग-साधना 32
- गृहस्थ एक तपोवन है 35
- महानता 38
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—25**
  पंचधा सूक्ष्मशरीर की साधना 40
- हिमालय के प्रति संवेदनशील रवैया—
  समय की माँग 41
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—186**
  पूज्य गुरुदेव की दृष्टि में समग्र स्वास्थ्य 44
- **युगगीता—293**
  बाह्य त्याग तामसिक होता है 48
- **विश्वविद्यालय परिसर से—232**
  'वसुधैव कुटुंबकम्' का संवाहक बना—
  देव संस्कृति विश्वविद्यालय 50
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  श्रद्धा के बीजारोपण की साधना 54
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  भूगर्भ में प्रकाश का प्रवेश 61
- **अपनों से अपनी बात**
  आत्मशुद्धि ही तप का आधार 64
- युग-परिवर्तन निश्चित होगा (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

नवदुर्गा की विशिष्ट साधना का पर्व : नवरात्र

अक्टूबर-नवंबर, 2024 के पर्व-त्योहार

बुधवार	02 अक्टूबर	गांधी-शास्त्री जयंती/सर्वपितृ अमावस्या	शुक्रवार	01 नवंबर	दीपावली
गुरुवार	03 अक्टूबर	नवरात्र आरंभ	शनिवार	02 नवंबर	अन्नकूट/बेसतुबरस
शनिवार	12 अक्टूबर	विजयादशमी	रविवार	03 नवंबर	भाईदूज
सोमवार	14 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी	बुधवार	06 नवंबर	लाभ पंचमी
गुरुवार	17 अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती/शरद् पूर्णिमा	गुरुवार	07 नवंबर	सूर्य षष्ठी
रविवार	20 अक्टूबर	करवा चौथ	मंगलवार	12 नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी
रविवार	27 अक्टूबर	रमा एकादशी	गुरुवार	14 नवंबर	बाल दिवस
बुधवार	30 अक्टूबर	धनतेरस	शुक्रवार	15 नवंबर	गुरुनानक जयंती/ देव दीपावली
गुरुवार	31 अक्टूबर	रूप चतुर्दशी	मंगलवार	26 नवंबर	उत्पत्ति एकादशी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

बंद करो खरचीली शादी

स्रष्टा की रचित इस सृष्टि में जब-जब असंतुलन पैदा होता है, तब-तब अधर्म के नाश के लिए और धर्म की स्थापना के लिए विधाता एक ऐसे वातावरण को निर्मित करते हैं—जिसमें जाग्रत आत्माएँ, संघर्ष व सृजन के माध्यम से सामयिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने के लिए आगे आती हैं। इन दिनों भी कुछ ऐसा ही घट रहा है। अदृश्य व परोक्ष जगत् में उमड़ता उत्साह, देवशक्तियों का एकत्रीकरण—कुछ ऐसे संकेत हैं, जो इन्हीं ऐतिहासिक गतिविधियों के क्रियान्वयन की ओर इशारा करते हैं।

सृजन का एक सहयोगी पक्ष संघर्ष है। पुराना, यदि अवांछित है तो उसको हटाने के बाद ही सृजन कार्य संभव हो सकता है। टूटे को हटाया न जाए, तो क्या नूतन निर्माण संभव हो सकता है? वर्तमान में भी कुछ ऐसे ही प्रयासों को सामूहिक रूप से करने की आवश्यकता है, ताकि नवनिर्माण हेतु अपेक्षित वातावरण के निर्माण में यथेष्ट सहयोग मिल सके।

इनमें से एक है—खरचीली शादियों को रोकना, और इनका स्वरूप संघर्षात्मक है और दूसरा है—वृक्षों को लगाना, जिसका स्वरूप सृजनात्मक है। दोनों प्रयास एकदूसरे से भिन्न दिखते हुए भी—एक दूसरे के पूरक हैं। भगवान परशुराम ने अपने जीवन का एक भाग दुर्बुद्धियों के उन्मूलन में लगाया तो दूसरा हिस्सा हरीतिमा संवर्द्धन को समर्पित किया। आज गायत्री परिजनों को भी भगवान परशुराम के उस सत्प्रयास को पुनः साकार करने का बीड़ा अपने संकल्प से अभिमंत्रित एवं पवित्र हाथों में लेना है।

आज ऐसा कौन होगा, जिसे खरचीली शादियों से पनपने वाले सामाजिक पतन का भान न हो? कौन नहीं जानता कि खरचीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं? जब राष्ट्र की आधे से ज्यादा आबादी, एक वक्त के भोजन के लिए तरस रही हो तो ऐसे में शादियों पर लाखों-करोड़ों खरच करने वाले अहंकार से भरे पिशाच ही कहे जा सकते हैं।

कन्या पक्ष इन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए विवश है। दूसरा पक्ष दर्प, अहंकार से भरे व्यक्तियों का है। यह देखकर कहीं से ऐसा नहीं लगता कि मानवता का सम्मान शेष रह गया है, बल्कि ऐसा लगता है कि कोई मानवीय प्रेत, मनुष्य का आवरण ओढ़कर यह उन्मादी कुकृत्य करने पर आमादा हो गया है।

आज जब हमारे इस राष्ट्र की एक-एक पाई, विकास में लगाने की आवश्यकता है, तब हमारी एक-तिहाई आमदनी इस बे-सिर, पैर के उन्माद को पूरा करने में चली जाती है तो भविष्य की सोचकर चिंता होती है। यदि लोगों के गाढ़े परिश्रम की कमाई इस तरह के भौंड़े प्रदर्शन में नष्ट होती रहेगी तो हम उन सभ्य देशों की बिरादरी में कैसे बैठ सकेंगे, जहाँ शादी तो एक सामान्य उत्सव होती है, पर व्यक्ति के परिश्रम से उपार्जित धन उनके व राष्ट्र के विकास में उपयोगी सिद्ध होता है।

आज गायत्री परिवार के सदस्यों की संख्या कुछ करोड़ के करीब है। हम सबको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम अपने लड़के-लड़कियों

की शादी बिना दहेज व भौंड़े प्रदर्शन के करें, न वर पक्ष वाले दहेज माँगें और न वधू पक्ष वाले बरात की धूम-धाम की माँग करें। प्रज्ञा परिवार में तो ये परंपरा निश्चित रूप से चलनी चाहिए।

दूसरा अभियान हरीतिमा संवर्द्धन का है। आज वायु प्रदूषण जहर की तरह से फैल गया है। मृदा का क्षरण रोकने से लेकर धरती को खाद प्रदान करने तक तथा वर्षा का संतुलन बनाए रखने के लिए वृक्षों की आवश्यकता होती है। जलाने के लिए लकड़ी, फर्नीचर के लिए लकड़ी और निर्माण के लिए भी लकड़ी की आवश्यकता होती है। पशुओं के लिए चारा और जीव-जंतुओं के लिए छाया भी वहीं से उपलब्ध होती है। इसलिए प्रज्ञा परिजनों को वृक्ष लगाने के महान अभियान को अपने जीवन का अंग बनाना चाहिए। गायत्री परिवार की प्रत्येक आत्मा—जाग्रत आत्मा है—हमें इन दोनों आंदोलनों को सफल बनाने के लिए तुरंत ही प्रयासों को प्रारंभ कर देना चाहिए।

सृजन व संघर्ष, दोनों मिलकर ही अधर्म का उन्मूलन व धर्म की स्थापना के ईश्वरीय प्रयोजन को पूरा करते हैं—प्रत्येक प्रज्ञा परिजन को उन्हें व्यापक बनाने के लिए प्राणपण से जुटना व युगधर्म का पालन करना चाहिए। ❑

एक बार संत नामदेव घर लौटे तो उनके पैरों में कटने का निशान था, जिससे खून बह रहा था। उनकी माँ ने उनसे पूछा कि उन्हें चोट कैसे लगी तो वे बोले—"माँ! मुझे यह चोट मेरी कुल्हाड़ी से लगी।"

माँ को लगा कि शायद उन्हें यह चोट भूलवश लग गई होगी, पर ज्यादा पूछने पर पता चला कि नामदेव ने जान-बूझकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी का प्रहार किया था। यह सुनकर माँ को बड़ा क्रोध आया और वे नामदेव को भला-बुरा कहने लगीं।

तब नामदेव बोले—"क्रोध न कर माँ! मैं तो केवल यह देखना चाहता था कि जब इस कुल्हाड़ी से हम पेड़ों पर प्रहार करते हैं तो उन्हें भी हमारी तरह दरद होता है अथवा नहीं।" ऐसे कोमल स्वभाव के थे—संत नामदेव।

दृढ़ भक्ति से हुई ध्रुव को भगवत्प्राप्ति

श्रीमद्भागवत में बालक ध्रुव की अटल व दृढ़ भगवद्भक्ति की बड़ी अद्‌भुत व आनंदमयी कथा वर्णित है। कथा के अनुसार महाराज उत्तानपाद की दो भार्याएँ थीं—सुनीति और सुरुचि। सुनीति बड़ी रानी थीं और सुरुचि छोटी। राजा उत्तानपाद के सुनीति से ध्रुव तथा सुरुचि से उत्तम नामक पुत्र उत्पन्न हुए।

यद्यपि ध्रुव की माँ सुनीति बड़ी रानी थी, परंतु राजा उत्तानपाद, सुरुचि के प्रति विशेष आकर्षित होने के कारण बड़ी रानी की प्रायः उपेक्षा और सुरुचि की उचित-अनुचित बातों का समर्थन किया करते थे। दरअसल सुरुचि के रूप-लावण्य ने उत्तानपाद को इस कदर वशीभूत कर रखा था कि वे सुरुचि के अनुचित व्यवहार का भी विरोध नहीं कर पाते थे।

एक दिन 5 वर्ष का बालक ध्रुव राजसभा में राजसिंहासन पर विराजमान अपने पिता की गोद में जा बैठा। उस समय सुरुचि का पुत्र उत्तम भी महाराज की गोद में बैठा था। अपनी सौत के पुत्र ध्रुव को राजा की गोद में बैठते हुए देखकर सुरुचि ईर्ष्या से जल-भुन गई और उसने तुरंत ध्रुव को पिता उत्तानपाद की गोद से खींचकर नीचे उतार दिया।

इसके बाद अपने पुत्र उत्तम को राजा की गोद में बैठाते हुए तथा ध्रुव को फटकारती हुई वह बोली—''रे बालक! तू राजा की गोद में बैठने का अधिकारी नहीं। तू सिंहासन पर भी बैठने का अधिकारी नहीं। राजा की गोद में और सिंहासन पर वही बैठ सकता है, जो मेरी कोख से पैदा हुआ है। यदि तुम राजा की गोद में और सिंहासन पर बैठना चाहते हो तो तुम्हें भगवान को प्रसन्न कर मेरी कोख से जन्म लेना होगा।''

यद्यपि बालक ध्रुव को सौतेली माँ सुरुचि की कुटिलता समझ में नहीं आई, पर उसे यह अवश्य ही समझ में आ गया कि उसका अपमान हुआ है। ध्रुव को अपनी सौतेली माता के इस व्यवहार से बहुत दुःख हुआ, पर वह कर ही क्या सकता था? वह रोता-बिलखता अपनी माता सुनीति के पास पहुँचा और उसने अपनी माँ से लिपटकर रोते हुए माँ को सारी बातें बताईं।

सारी बातें जानने के पश्चात सुनीति बोलीं—''पुत्र ध्रुव! तुम्हारे पिता तुम्हारी छोटी माता के वशीभूत होने के कारण तुम्हारे साथ हुए दुर्व्यवहार का विरोध तक नहीं कर सके, पर तुम निराश मत हो पुत्र! कहते हैं कि जिसका कोई सहारा नहीं, उसका सहारा भगवान होते हैं। वे अनाथों के नाथ और बेसहारों का सहारा हैं।''

वे आगे बोलीं—''संपूर्ण लौकिक और अलौकिक सुखों के दाता भगवान ही हैं। भगवान के सिवा तुम्हारे दुःख को दूर करने वाला और कोई नहीं है। जिसके रक्षक स्वयं भगवान होते हैं उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।''

उन्होंने उसे समझाया—''जिसका सहारा स्वयं भगवान हो जाते हैं, उसे और किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं होती पुत्र! तुम्हारे पिता की गोद से तुम्हें तुम्हारी सौतेली माँ उतार सकती है, पर जो परमपिता की गोद में जा बैठता है, उसे उनकी गोद

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

से कोई नहीं उतार सकता।'''' "पर माँ! वे परमपिता हैं कहाँ, जिनकी गोद में मैं बैठ सकूँगा?" निर्मल हृदय ध्रुव ने अपनी माँ से पूछा।

माँ पुत्र को समझाते हुए बोलीं—"पुत्र! जैसे यह राजमहल तुम्हारे पिता ने बनाया है और तुम्हारे पिता इस राज्य के राजा हैं, वैसे ही इस सारी सृष्टि के राजा भगवान हैं; क्योंकि इस सृष्टि के सृजनहार एकमात्र भगवान ही हैं।"

"पर भगवान रहते कहाँ हैं माँ? वे मुझे मिलेंगे कहाँ और कैसे?" ध्रुव ने पूछा, तो माँ बोलीं—"पुत्र! वे सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, इसलिए उन्हें तुम जहाँ भी पुकारोगे वहीं वे तुम्हारी बातें सुनेंगे और तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे। इसलिए पुत्र! तुम भगवान की आराधना करो, भगवान की भक्ति करो। वे तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे।" निर्मल हृदय ध्रुव के मन में माँ की बातें घर कर गईं।

ध्रुव बोला—"माँ! मुझे आज्ञा दो मैं वन में जाकर भगवान की आराधना करना चाहता हूँ।" माँ बोलीं—"पुत्र! तुम अभी बालक हो, इसलिए तुम कुछ बड़े हो जाओ, उसके बाद वन में जाकर प्रभु की आराधना करना, अभी तुम घर में रहकर ही भगवान की आराधना करो।" पर बालक बार-बार राजमहल के शोर-शराबे से दूर एकांत वन में जाकर शांत चित्त होकर भगवान की आराधना करने की जिद करने लगा।

पूर्वजन्म के दिव्य संस्कारों के कारण ही 5 वर्ष के बालक ध्रुव में भगवद्आराधना के प्रति ऐसी दृढ़भावना पैदा हुई थी, वरना 5 वर्ष के बालक तो खाने और खेलने मात्र की ही जिद किया करते हैं। अंततः ध्रुव की जिद और भगवान पर पूर्ण भरोसा होने के कारण सुनीति ने अपने पुत्र को वन में जाने की आज्ञा दे दी। बालक ध्रुव दृढ़ निश्चय के साथ वन की ओर चला जा रहा था। कहते हैं कि सर्वव्यापी और सर्वज्ञ भगवान सर्वत्र हैं और वे सब कुछ जानते हैं, वे सब कुछ देखते हैं और वे उसकी मदद अवश्य करते हैं, जो भगवान की ओर चल पड़ता है सो भगवत्कृपा से ही मार्ग में ध्रुव को देवर्षि नारद मिले।

दोनों में वार्त्ता हुई। ध्रुव के दृढ़ निश्चय को देखकर देवर्षि नारद विस्मित हुए और प्रसन्न भी और बोले—"पर पुत्र! तुम्हारी आयु अभी छोटी है। यह उम्र तो खेलने और खाने की है। इस अवस्था में तुम वन में भला तपस्या कैसे कर सकोगे? फिर बड़े-बड़े योगी-मुनि तो दीर्घकाल तक तपस्या करते रहने के पश्चात भी भगवान का दर्शन अनेकों जन्मों के पश्चात कर पाते हैं।" ये बातें सुनकर भी ध्रुव अपने निर्णय पर अडिग रहा और बोला—"मुने! आप बड़े दयालु हैं, अस्तु आप मुझे कोई ऐसा उपाय ही बताइए, जिससे मैं शीघ्र ही भगवान को पा सकूँ।"

ध्रुव के हृदय में भय या शंका का लेशमात्र भी नहीं था। उसकी निष्ठा देखकर देवर्षि भी द्रवित हो गए और उसे आशीर्वाद दिया—"पुत्र ध्रुव! तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। तुम निर्मल, निश्छल और निश्चल हो। तुम्हें भगवान अवश्य प्राप्त होंगे। तुम यमुना जी के तटस्थित मधुवन चले जाओ और वहाँ रहकर अपने हृदय में श्रीहरि भगवान विष्णु का ध्यान करते हुए '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर मंत्र का जाप करना।"

देवर्षि नारद के कहे अनुसार ध्रुव यमुना जी के किनारे मधुवन में जा पहुँचे और भगवान की भक्ति करने लगे। वे नित्य प्रातः, मध्याह्न व सायंकाल में यमुना में स्नान कर स्थिर, सुखपूर्वक आसन पर बैठकर प्राणायाम करते, फिर चित्त को स्थिर व एकाग्र करके अपने हृदय में भगवान विष्णु के दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुए महामंत्र का जाप करते।

नित्य भगवद्आराधना के फलस्वरूप उनका चित्त पूर्णत: निर्मल होकर भगवान के ध्यान में डूब कर भगवान के साथ एकाकार होने लगा। साधना के दौरान साधक के मन में प्राय: शंका, भय और नानाविध प्रलोभनों का बवंडर उठ खड़ा होता है। उस स्थिति में साधक को धैर्य, साहस, उत्साह, उमंग, श्रद्धा, भक्ति में अडिग व अटल रहना होता है, तभी उसकी साधना एवं भक्ति परिपक्व होकर पूर्णता को प्राप्त होती है और तभी भगवद्साक्षात्कार के रूप में साधक को, भक्त को परमपद की प्राप्ति होती है।

ध्रुव के मन में भी कई बड़ी भयानक, भयावह परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, कभी माया ने माता सुनीति का रूप धारण कर ध्रुव पर ममता का जाल फेंका तो कभी माया ने राजमहल के सुख-वैभव की कल्पना का चित्र-विचित्र चलचित्र दिखाकर ध्रुव को साधना से विचलित करने का प्रयास किया, पर ध्रुव प्रभु के ध्यान में मग्न रहे, उनका चित्त प्रभु के ध्यान में ही लीन रहा।

इस प्रकार तपस्या करते हुए ध्रुव को छह माह बीत गए। तब करुणासिंधु भगवान ने अपने भक्त ध्रुव पर करुणा की और वे ध्रुव के समक्ष प्रकट हुए। उस समय भी ध्रुव भगवान के ध्यान में मग्न थे, डूबे हुए थे। यह सत्य है कि भक्त को साध्य तो प्रिय होता ही है, किंतु उसे साधन भी कम प्रिय नहीं होता अर्थात उसे भगवान तो प्रिय होते ही हैं, पर भक्ति भी उसे बहुत प्रिय लगती है; क्योंकि भक्ति ही तो उसे भगवान को प्राप्त कराती है।

साधन से ही साधक भगवान का ध्यान करता है, इसलिए उसे साधन अर्थात ध्यान भी प्रिय होता है; क्योंकि उसी साधन से, उसी ध्यान से वह भगवान को प्राप्त करता है। भगवान वहाँ प्रकट हो चुके थे, पर अभी भी ध्रुव भगवान के ध्यान में मग्न थे, तब भगवान ने ध्रुव के ध्यान से अपने स्वरूप को हटाया, तब जाकर विकल होकर ध्रुव ने आँखें खोलीं।

अपने समक्ष साक्षात् भगवान को प्रकट हुआ देखकर ध्रुव के हृदय में अलौकिक आह्लाद हुआ, शरीर रोमांचित हो गया, उनके रोम-रोम पुलकित हो उठे, नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे और वे प्रभु के चरणों में लेट गए।

परमात्मा से भक्त के मिलन की, परमात्मा से जीवात्मा के मिलन की वह भावदशा शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती; क्योंकि यह वर्णन भक्त के हृदय में उठ रहे अलौकिक आह्लाद का है, आनंद का है, ब्रह्मानंद का है, जो कि वर्णन से परे है, वर्णनातीत है। इसे सिर्फ और सिर्फ साधक ही, भक्त ही अनुभव कर सकता है, पर उस अनुभव का पूर्णरूपेण वर्णन तो वह भी नहीं कर सकता।

प्रभु के प्रेम में डूबे ध्रुव की वाणी अवरुद्ध हो गई। वे भगवान को प्रणाम करने के लिए दोनों हाथ जोड़ना चाहते थे, पर शरीर के अत्यधिक रोमांचित होने के कारण वे हाथ भी नहीं जोड़ पा रहे थे। प्रभु को ठीक से प्रणाम भी नहीं कर पा रहे थे। अंत में बमुश्किल उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़े और भगवान की स्तुति करनी चाही, पर प्रभु के दिव्य दर्शन और हृदय में उमड़ रहे प्रेम के कारण उनकी वाणी शांत रही।

तभी करुणासिंधु भगवान ने अपना वेदमय शंख ध्रुव के कपाल से स्पर्श कर दिया। शंख का स्पर्श होते ही ध्रुव को संपूर्ण वेदज्ञान सुलभ हो गया। उन्हें दिव्य वाणी प्राप्त हो गई और दिव्य वाणी से वे भगवान की स्तुति करने लगे—"हे भगवन्! आप परमानंद मूर्ति हैं, आप करुणासिंधु हैं—जो लोग ऐसा समझकर निष्काम भाव से आपका सुमिरन, स्मरण, भजन, ध्यान करते हैं, उनके लिए

राज्यादि भोगों की अपेक्षा आपके चरणकमलों की प्राप्ति ही भजन का सच्चा फल है।

''स्वामिन्! यद्यपि बात ऐसी ही है, तो भी गौ जैसे तुरंत जन्मे हुए बछड़े को दूध पिलाती और व्याघ्रादि से बचाती रहती है, उसी प्रकार आप भी भक्तों पर कृपा करने के लिए निरंतर आतुर रहने के कारण हम जैसे सकाम जीवों की कामना पूर्ण करके संसार भय से उनकी रक्षा करते रहते हैं।

''हे प्रभो! हे नाथ! हे करुणासिंधु! हे भक्तवत्सल! हे दीनबंधु! आपकी कृपा का भला क्या कहना! बड़े-बड़े योगियों, ऋषियों, मुनियों को भी आपके जिस रूप के दर्शन नहीं प्राप्त होते, उस दिव्य स्वरूप का दर्शन आपने मुझे छह मास के अल्प समय में ही दे दिया। अब मैं सचमुच कृतार्थ हो गया, निहाल हो गया, धन्य हो गया प्रभु! हे प्रभो! आपकी विलक्षण कृपा पाकर तो अब मेरे चित्त में कोई कामना, लालसा, अभिलाषा ही नहीं रही। हे प्रभो! मुझे तो सिर्फ-और-सिर्फ आपके सान्निध्य की लालसा है। अन्य कोई भी लालसा है ही नहीं।''

तब करुणासिंधु भगवान बोले—''पुत्र ध्रुव! तुम्हारे मन में निस्संदेह कोई लालसा नहीं, कोई कामना नहीं, कोई अभिलाषा नहीं है, पर पुत्र, तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना ही होगा। मेरी आज्ञा से तुम्हें राज्यभार सँभालना होगा। ग्रह-नक्षत्रों से ऊपर तुम्हें ध्रुवपद प्राप्त होगा। जीवन भर तुम पर मेरी अनोखी कृपा बरसती रहेगी और अंत में तुम मेरे पास ही आओगे, जहाँ से तुम्हें फिर लौटना नहीं होगा।'' कृपासिंधु भगवान ध्रुव को यह आदेश देकर अंतर्धान हो गए।

भगवान के आदेशानुसार ध्रुव वन से राजमहल लौट आए। पिता सहित सभी परिजनों व राजकर्मियों ने उनका अभिनंदन किया। सौतेली माँ सुरुचि ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया और माता सुनीति ने तो आरती उतारते हुए प्रेमाश्रुओं से अपने पुत्र का अभिषेक कर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। ध्रुव का अर्थ ही होता है—अटल, स्थिर, निश्चल, दृढ़ या जिसको अपनी जगह से हटाया न जा सके। सचमुच ध्रुव ने अपने नाम को पूरी तरह से सार्थक किया तथा अपनी अटल, स्थिर और दृढ़भक्ति से भगवान को प्राप्त किया।

यदि हमारी आस्था भी, हमारी भक्ति भी, हमारी श्रद्धा भी, ध्रुव की तरह अटल हो, स्थिर हो, निश्चल हो, दृढ़ हो तो हम भी भगवान की नित्य, निरंतर उपासना करते हुए भगवान की गोद में बैठने का परम सुख प्राप्त कर सकते हैं। हम भी परमपद प्राप्त कर सकते हैं।

यह हम पर निर्भर करता है कि हम संसार की गोद में बैठकर क्षणिक सांसारिक सुख, इंद्रिय सुख, भौतिक सुख पाते हुए निरंतर दुःख पाते रहना चाहते हैं और जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहना चाहते हैं या फिर भगवद्उपासना, भगवद्भक्ति करते हुए भगवत्प्राप्ति कर परम सुख, शाश्वत सुख प्राप्त करना चाहते हैं और भौतिक-आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के सुखों को पाकर अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हैं। ❑

दान अर्थात 'देना' यही पुण्य है। लेना अर्थात अधिकारों का अपहरण, यही पाप है। पाप की परिणति लौकिक और पारलौकिक क्षेत्र में अवगति-दुर्गति स्तर की होती है। नरक इसी का आलंकारिक प्रतिपादन है। दोनों में से अपनी गतिविधियाँ किस पक्ष के साथ विनियोजित करनी हैं, यह मनुष्य की अपनी इच्छाओं की बात है। —*परमपूज्य गुरुदेव*

वाक्शक्ति का सदुपयोग किया जाए

मनुष्य जीवन में वाणी का बहुत महत्त्व है, इसे व्यक्तित्व का आभूषण कहा गया है। वाणी से जहाँ मनुष्य के व्यक्तित्व का परिचय मिल जाता है, वहीं यह मनोभावों को अभिव्यक्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है, लेकिन हम इसका उपयोग किस रूप में करते हैं, यह महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वाणी एक दुधारी तलवार की तरह है, जिसके माध्यम से हम संसार को अपना मित्र भी बना सकते हैं अथवा शत्रु भी। वाणी का उपयोग तो सभी करते हैं, किंतु कहाँ, क्या व कितना बोलना चाहिए, यह कला कम ही व्यक्तियों को आती है।

अधिकांश लोग वाक्शक्ति के प्रभाव से अनभिज्ञ रहते हैं व जो मन में आया उसे बोलते रहते हैं। जबकि वाणी की शक्ति को समझते हुए इसकी सचेतन अभिव्यक्ति अभीष्ट है, जिसका सांसारिक सफलताओं के साथ आंतरिक विकास में बहुत बड़ा योगदान रहता है। सफल पारिवारिक जीवन से लेकर प्रभावशाली लोकजीवन का यह सशक्त आधार है।

तत्त्ववेत्ताओं ने शब्द को शिव और वाणी को शक्ति कहा है। इनकी समझ व सदुपयोग एक तरह से व्यक्ति को अमृततत्त्व का अधिकारी बना देता है एवं व्यक्तित्व की आध्यात्मिक संपदा से परिचय करवा देता है। ऋषियों ने शब्द शक्ति का महत्त्व समझते हुए इस पर गंभीर अनुसंधान किए और मंत्र विद्या का आविष्कार किया और वाणी के सूत्र दिए। ऋग्वेद में वाणी के रहस्य व उपयोग के संदर्भ में संकेत करते हुए ऋषि कहते हैं कि बहुत लोग वाणी का चमत्कार देखते हुए भी आँखें बंद किए रहते हैं।

कुछ उसका प्रभाव सुनते हुए भी कान बंद किए रहते हैं, किंतु जो उसे देखते और सुनते हैं, उसके सम्मुख यह परमकल्याणी वाक्देवी अपने को समर्पित कर देती है। यही वाक्शक्ति अपने अलौकिक स्वरूप से साधक के जीवन को कृतार्थ कर देती है। इस तरह शब्द मात्र कंठ और जिह्वा का उच्चारण भर नहीं है। इसमें अजस्र शक्ति का भंडार भरा पड़ा है, जिसका उच्चारण स्वयं को तथा दूसरों को प्रभावित करता है।

जो इसका मर्म समझ लेते हैं, वे एक-एक शब्द को नाप-तौलकर बोलते हैं और इसमें अपनी निश्छलता एवं श्रद्धा का समावेश करते हुए इसे इतना सशक्त बना देते हैं कि सुनने वाला प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। निस्संदेह वाणी वही है, जो दूसरों का हृदय छू सके। शब्द वही है, जो निकलने के साथ अपने को हलका करे और दूसरे को शांति, शीतलता व दिशा दे; जबकि वाणी से अनर्गल बकवास तो अपने ही शक्ति-प्रवाह को नष्ट करता है।

अनुपयुक्त और दुर्भाव भरे शब्द दूसरों को तीर की तरह घायल करते हैं और अपने लिए प्रतिशोध एवं विद्वेष की प्रतिक्रिया लेकर लौटते हैं। द्रौपदी के दुर्योधन को अपमान और तिरस्कार भरे कुछेक शब्द महाभारत का परिदृश्य खड़ा करते हैं, जिसमें 18 अक्षौहिणी सेना का विनाश होता है। दुर्बुद्धि से भरे अकल्याणकारी वचन अपने पैरों में गड़ने वाले काँटे बोने जैसा उपक्रम सिद्ध होते हैं।

वाणी के उच्चारण के संदर्भ में ऋग्वेद की यह शिक्षा हृदयंगम करने योग्य है कि बुद्धिमान लोग वाणी का प्रयोग चुने हुए शब्दों में करते हैं।

छलनी से छानकर जैसे भूसी अलग कर दी जाती है, वैसे ही मन से शब्दों को छानकर ही जो कहना चाहिए वे उतना ही कहते हैं। वाणी की गरिमा और प्रभावशीलता बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि कुछ बोलने के लिए मुख खोलने से पहले विचार कर लें कि हम जो कहना चाहते हैं, वह सद्भावनायुक्त है अथवा नहीं। इसमें छल, व्यंग, क्रोध या तिरस्कार तो नहीं छिपा हुआ है। इसे कहने से सुनने वाले का अकल्याण तो नहीं होगा। इतना विचार करने के पश्चात उतना ही बोला जाए, जितना कि आवश्यक तथा हितकर है। इससे असत्य, छल आदि कितने ही दोषों से बचा जा सकता है और वाणी के प्रभाव एवं तेजस् को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

जिह्वा को सरस्वती का निवासस्थल कहा गया है। उससे मृदुल, मधुर, हितकर, सत्ययुक्त, सद्भावनासंपन्न वचन बोले जाएँ तो उन्हें अमृत बूँदों की तरह ग्रहण करने के लिए लोग लालायित रहते हैं। उससे प्रकाश ग्रहण करते हैं और दुर्भावनाओं के कलुष धोकर अपनी पवित्रता में अभिवृद्धि करते हैं। यदि शब्द की गरिमा को समझते हुए साधारण वार्त्तालाप को भी नपे-तुले शब्दों में किया जाए तो मंत्र समान ही यह वार्त्तालाप भी चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न करता है।

जिस मंत्रशक्ति से देवताओं को द्रवित व आकर्षित कर उनके अनुग्रह को प्राप्त किया जा सकता है, उससे मनुष्य को क्यों प्रभावित नहीं किया जा सकता? शर्त इतनी ही है कि वाणी को सरस्वती का प्रतीक मानकर उसका श्रेष्ठतम उपयोग किया जाए।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि इस वाणी के आधार पर ही मनुष्य और देव-गंधर्व जीवन धारण किए हुए हैं। यह सारा ब्रह्मांड उस वाणी में समाहित है। इस इंद्र जैसी विभूतियों से संपन्न कर देने वाली वाणी से ही हम प्रीति करें।

मित्र और शत्रु बनाने की क्षमता से संपन्न वाणी का जो दूसरों का दिल दुखाने, भ्रमित करने एवं छलने के लिए बिच्छू के डंक की तरह उपयोग करता है, वह अपने शत्रु ही बढ़ाता है। अपने लिए अश्रद्धा और वैर-विरोध ही उत्पन्न करता है। ऐसे लोगों की प्रगति रुक जाती है, प्रतिभा मरणशील व कुंठित होने लगती है, किंतु जो सद्भावना, सज्जनता और सहानुभूति भरे श्रेय-पथ पर प्रेरित करने वाले ज्ञानवर्द्धक वचन ही बोलते हैं, उनके लिए मित्रों की संख्या में कमी नहीं रहती। सहयोगी व सहचरों से वे घिरे रहते हैं। स्वर्गलोक में अमृततत्त्व की चर्चा की जाती है, पर उसका प्रतीक जिह्वा के अग्र भाग पर ही बताया जाता है।

सांत्वना और प्रेरणा भरे शब्द अमृत के समान ही हैं, जिनकी कुछ बूँद पाने वाला पुलकित हो जाता है और उस अनुदान के प्रति सदा कृतज्ञ बना रहता है। धन आदि की सहायता लोग भूल जाते हैं, पर मधुर व्यवहार को भुला सकना किसी के लिए भी संभव नहीं होता, यहाँ तक कि दुष्ट-दुरात्मा भी ऐसी मधुरता के वशीभूत हो जाते हैं। इसलिए वाणी को जीवनदात्री कहा गया है।

मधुर वचनों को नीतिकारों ने वशीकरण मंत्र कहा है। कौआ किसी को हानि न पहुँचाते हुए भी अपनी कर्कश अभिव्यक्तियों के कारण तिरस्कृत होता है और कोयल किसी को कुछ भी न देते हुए भी केवल वाणी की मधुरता के कारण सबकी प्रियभाजन बनती है। आकाश की तन्मात्रा शब्द है।

शब्द विद्या का, मंत्र विद्या का जो मर्म समझते हैं, वे ब्रह्मांड में संव्याप्त शक्ति, सिद्धियों और विभूतियों से संपन्न हो जाते हैं।

इंद्र के ऐश्वर्य की तरह वाणी की यह शब्द विद्या का प्रयोग उपासना-क्षेत्र में चमत्कार उत्पन्न करता है और व्यावहारिक जीवन को भी समृद्ध बनाता है तथा जीवन में प्रगति के द्वार खोलता है। इस तरह वाणी मात्र शब्दोच्चारण को ही नहीं कहते, वरन उसके साथ जो प्रयोजन भाव, प्रयोग जुड़ा रहता है, वस्तुतः वही उसका प्राण है।

इन प्रयोजनों से युक्त यदि बोला जाए, तो वाणी अपने अभीष्ट को पूरा करती है और यदि न भी बोला जाए, तो प्रचंड प्राण-प्रवाह के रूप में वह दिव्यता जिनके अंतःकरणों से निकलती है, उनके स्वयं के अंतःकरण को शुद्ध करती है और जिनके लिए लक्ष्य किया गया है—उनका और समस्त संसार का भला करती है।

हमें वाणी के माध्यम से इसके मित, मधुर और कल्याणकारी स्वरूप को अपनाना चाहिए, इसी में हर दृष्टि से हमारा हित है। ❑

देवासुर संग्राम हुआ, उसमें देवता बुरी तरह पराजित हुए। विजय प्राप्ति के पश्चात असुर अपने गुरु शुक्राचार्य से आशीर्वाद लेने पहुँचे। शुक्राचार्य ने कहा— ''अधर्म भी धर्म के संबल से आगे बढ़ता है। तुम लोग दीर्घकाल तक राज करने के लिए प्रचंड तपस्या करो, शील, संयम व सदाचार का पालन करो। इससे प्राप्त ऊर्जा तुम्हारा कल्याण करेगी।'' असुरगण तपस्या में रत हो गए। देवता इस सारी घटना को सुनाने भगवान विष्णु के पास पहुँचे। भगवान विष्णु ने देवताओं को एक युक्ति सुझाई।

देवताओं में से एक ने मायामोह नामक व्यक्ति का रूप धरा और असुरों के पास पहुँचा। असुर जंगल में तपस्यारत थे। उसने असुरों से इतनी घोर तपस्या का कारण पूछा। असुर बोले—''हम देवताओं पर सदा के लिए राज्य करना चाहते हैं, इसलिए सत्कार्यों के पथ पर चल रहे हैं।'' मायामोह हँसा और बोला—''इतनी तपस्या करके भी देवता अपने आप से पराजित हो गए। राजपाट का असली आनंद उसे भोगने में है, स्वयं को कष्ट देने में नहीं।'' असुर उसकी बातों में आ गए और मौज-मजा करने में लग गए। तपस्या से अर्जित पुण्य शीघ्र चुक गया और असुर अगले संग्राम में बुरी तरह से पराजित हुए। मनुष्य को भी सदा श्रेष्ठ और पुण्यकर्म करते रहना चाहिए; क्योंकि भोग-विलास का परिणाम दुःखद होता है।

भक्तवत्सल हैं भगवान

भगवान के कई नामों में एक नाम भक्तवत्सल भी है। 'वत्सल' शब्द 'वत्स' से बना है, जिसका अर्थ है बछड़ा। जैसे एक गाय अपने बछड़े से सर्वाधिक प्रेम करती है, वैसे ही भगवान भी भक्तों से सर्वाधिक प्रेम करते हैं।

एक गाय अपने बछड़े पर अपना सर्वस्व, अपना संपूर्ण प्रेम उड़ेल देती है; वैसे ही भगवान भी भक्तों पर अपना संपूर्ण प्रेम उड़ेल देते हैं। इसलिए भगवान को भक्तवत्सल कहा गया है। जैसे एक गाय अपने बछड़े का सदैव ख्याल रखती है, उसे देखते ही उसे दुग्धपान कराने को रँभाने लगती है, उसे देखकर हर्षित और आह्लादित होती है और उसे प्रेम से चाटने लगती है, वैसे ही भक्त भी भगवान के लिए उस बछड़े की तरह है, जिसे देखकर भगवान भी आह्लादित, आनंदित और आप्लावित हो उठते हैं।

जैसे गाय से अपने बछड़े का दुःख देखा नहीं जाता, वैसे ही भगवान से भी अपने भक्तरूपी बछड़े का दुःख देखा नहीं जाता। एक गाय अपने बछड़े को संकट में देख व्याकुल हो उठती है। वैसे ही भगवान भी अपने बछड़े को, अपने भक्त को संकट में देखकर व्याकुल हो उठते हैं और उसे संकटों से बाहर निकालने को तत्पर हो उठते हैं।

भगवान भक्तवत्सल हैं इसका तात्पर्य यही है कि भगवान के लिए भक्त भी उस बछड़े के समान हैं, जिससे वे सर्वाधिक प्रेम करते हैं। जैसे बछड़े को देखते ही गाय में प्रेम उमड़ आता है और वह बछड़े को चाटकर उसकी गंदगी साफ कर देती है, वैसे ही भक्तरूपी बछड़े को देखकर उसके प्र[illegible] भगवान का प्रेम उमड़ आता है और वे भी अप[illegible] प्रेम से अपने भक्तों के जन्म-जन्मांतरों की कर्मसंस्का[illegible] रूपी गंदगी को साफ कर देते हैं।

भगवान का भक्त के प्रति इस रूप में प्रेम ही 'वात्सल्य' कहलाता है। जब श्री नृसिंह रूप [illegible] अवतार लेकर भगवान ने हिरण्यकशिपु का वध किया तब भगवान के उस रूप को देखकर, उनके क्रोध को देखकर सभी भयभीत हो गए।

हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को हरिभक्त होने के कारण ही तरह-तरह की यातनाएँ दी थीं और उसको जान से मारने के कई प्रयास किए थे, पर हर बार हरिभक्त प्रह्लाद की प्राणरक्षा स्वयं श्रीहरि विष्णु भगवान करते रहे। अंत में उन्होंने हिरण्यकशिपु का वध किया, पर उसका वध कर देने के बाद भी भगवान का क्रोध शांत नहीं हुआ। तब भगवान का क्रोध शांत हो, इसके लिए नारद जी ने भक्त प्रह्लाद को श्री नृसिंह रूप भगवान के पास भेजा, ताकि अपने भक्त को देखकर भगवान का क्रोध शांत हो सके।

प्रह्लाद को देखकर क्रोध से भरे भगवान तुरंत शांत हो गए और प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर उसे प्यार से चाटने लगे। यही भगवान का भक्तवत्सल रूप है। जो भक्तों पर कृपा करता और स्नेह रखता हो, जो भक्तों से असीम प्रेम करता हो, जो स्वयं से भी अधिक भक्तों से प्रेम करता हो, जो हर प्रकार से भक्तों की रक्षा और देख-भाल करता हो, जो भक्तों का योगक्षेम स्वयं वहन करता हो, उसे ही

भक्तवत्सल कहा जाता है। वत्सल का अर्थ है, जो वात्सल्य से परिपूर्ण हो।

जिस प्रकार गाय (वत्सला) अपने नवजात बछड़े (वत्स) के शरीर की सारी गंदगी चाटकर खा जाती है, उसे साफ कर देती है—उसी प्रकार भगवान अपने शरणागत भक्तों के पापों को भस्म कर देते हैं। उनके कर्म-संस्कारों को भस्म कर देते हैं और उन्हें मुक्त कर देते हैं, उनके लिए मुक्ति, मोक्ष, ब्रह्म साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। जो भक्तों के प्रति प्रेमपूर्ण और स्नेही हैं, जो उनकी देख-भाल करते हैं, वे ही भक्तवत्सल हैं, वे ही भगवान हैं। भक्तवत्सल भगवान की भक्तों पर कृपा, अनुग्रह, प्रेम, स्नेह बरसाने की अनेक कथाएँ शास्त्रों में वर्णित हैं।

एक कथा के अनुसार गजेंद्र नाम का एक हाथी जो हरिभक्त था, एक दिन एक धूप भरी दोपहरी में अपनी प्यास बुझाने के लिए एक नदी में उतरा तभी एक मगरमच्छ ने उसके पैर अपने मुख से पकड़ लिए। गजेंद्र ने अपने को छुड़ाने का बहुत प्रयास किया, पर वह असफल रहा। तब अंत में गजेंद्र ने स्वयं को मगरमच्छ से बचाने के लिए भगवान श्रीहरि विष्णु से प्रार्थना की। अपने भक्त की पुकार सुनकर भगवान शीघ्र ही वहाँ पहुँच गए और सुदर्शन चक्र से मगरमच्छ का सिर काट दिया। इस प्रकार उन्होंने गजेंद्र की प्राणरक्षा करने के साथ-साथ उसे मोक्ष भी प्रदान किया।

भगवान तो ऐसे परम भक्तवत्सल हैं कि वे भक्त की प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए स्वयं अपनी प्रतिज्ञा को भी भूल बैठते हैं। भक्त के लिए वे अपने बनाए नियम भी तोड़ देते हैं। महाभारत की कथा के अनुसार भगवान कृष्ण ने कौरवों और पांडवों के बीच युद्ध में स्वयं हथियार नहीं उठाने की प्रतिज्ञा की थी, पर भीष्म पितामह ने भगवान कृष्ण को उनकी प्रतिज्ञा के विरुद्ध हथियार उठाने को बाध्य कर दिया था।

भक्त और भगवान के बीच यह मीठी तकरार ही तो है। भगवान इतने भक्तवत्सल हैं कि वे भक्त के प्रेम में भक्त की प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए अपनी प्रतिज्ञा भी तोड़ देते हैं।

महाभारत में एक बार जब भीष्म पितामह ने अर्जुन के ऊपर बाणों की बौछार कर दी, तब अपने भक्त अर्जुन की प्राणरक्षा के लिए एक रथ का पहिया उठाकर भगवान कृष्ण भीष्म पितामह को मारने के लिए उनकी ओर दौड़ पड़े।

इस प्रकार भगवान ने भीष्म व अर्जुन, दोनों भक्तों की लाज बचाई और अपनी प्रतिज्ञा की जगह अपने भक्त की प्रतिज्ञा को अधिक महत्त्व दिया। भक्तवत्सल भगवान अपने भक्तों के अवगुण व दोष भी नहीं देखते।

इस संदर्भ में एक सुंदर कथा आती है कि एक बार परम भागवत, परम वैष्णव संत श्री रामानुजाचार्य जी महाराज श्री जगन्नाथ भगवान का दर्शन करने जगन्नाथपुरी धाम गए। वहाँ मंदिर में पंडे-पुजारियों के भ्रष्ट आचरण देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने वहाँ के एक राजा से मिलकर मंदिर में भ्रष्ट आचरण वाले पंडे-पुजारियों की जगह श्रेष्ठ और सद्गुणसंपन्न पुजारियों को श्री जगन्नाथ भगवान की सेवा-पूजा का कार्य सौंपने का सुझाव दिया।

इसके लिए राजा भी तैयार हो गए और राजा की सहमति से सभी पंडे-पुजारियों को हटाकर श्री रामानुजाचार्य ने अपने एक हजार शिष्यों को भगवान श्री जगन्नाथ स्वामी की सेवा-पूजा का कार्य सौंप दिया। उधर भगवान श्री जगन्नाथ स्वामी की सेवा-पूजा के कार्य से वंचित हो जाने के कारण बेचारे पंडे-पुजारी मंदिर के पीछे बैठकर रोने-

बिलखने लगे और अपने आचरण को लेकर श्री जगन्नाथ भगवान से क्षमा-प्रार्थना करने लगे।

भक्तवत्सल करुणासिंधु भगवान से उन पंडे-पुजारियों का दुःख देखा नहीं गया। भगवान ने स्वप्न में रामानुजाचार्य से कहा—''वत्स! वे पंडे-पुजारी जैसे भी हैं, मुझे अतिशय प्रिय हैं। तुम उन्हें मेरी सेवा-पूजा करने दो। जब वे लोग मेरे सम्मुख ताली बजाकर नृत्य करते हैं, तो वह मुझे बहुत ही प्रिय लगता है। अतः मेरी सेवा-पूजा का कार्य उन्हें करने दो।'' अनुशासनप्रिय रामानुजाचार्य जी ने कहा—''भगवान, भला वेद-विरुद्ध आचरण करने वाले उन पुजारियों को आपकी सेवा-पूजा मैं क्यों करने दूँ?''

भगवान बोले—''जब वे मेरे सम्मुख प्रेम से नृत्य करते हैं तब मुझे उनका दोष बिलकुल भी दिखाई नहीं देता, बल्कि उन्हें देखकर मैं आनंदित ही होता हूँ।'' श्री रामानुजाचार्य फिर भी अपने हठ पर अड़े रहे। भक्तवत्सल भगवान को अपने भक्त रामानुजाचार्य का हठ भी रखना था और उन पुजारियों पर करुणा भी करनी थी। सो उन्होंने गरुड़ जी को रामानुज को शिष्यों सहित श्री रंगनाथ धाम पहुँचाने की आज्ञा दी।

भगवान की आज्ञा पाकर गरुड़ जी ने रात में सो रहे रामानुजाचार्य को शिष्यों सहित श्री जगन्नाथ धाम से श्री रंगनाथ धाम पहुँचा दिया। प्रातः जब रामानुजाचार्य की आँखें खुलीं तो स्वयं को श्री रंगनाथ धाम में पाकर भगवान की भक्तवत्सलता का अनुभव कर वे गद्‌गद हो गए। वे समझ गए कि भक्तवत्सल भगवान ने उन पंडे-पुजारियों पर करुणा करने के लिए ही यह लीला रची है।

भगवान की ऐसी भक्तवत्सलता देखकर वे रोमांचित और आह्लादित हो उठे। उधर उन पंडे-पुजारियों को फिर से भगवान की सेवा-पूजा करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे सभी भी बड़े हर्षित और आह्लादित हुए। भगवान की भक्तवत्सलता को लेकर ऐसी अगणित कथाएँ हैं, दृष्टांत हैं, जिन्हें जानकर, सुनकर, पढ़कर हर भगवद्‌भक्त का मन आह्लादित हो उठता है और उनकी भगवद्‌भक्ति और भी दृढ़ हो उठती है। भगवान के प्रति उनकी प्रीति और अधिक तीव्र हो जाती है।

भक्तवत्सल होने के कारण ही तो भगवान राम ने शबरी के जूठे बेर खाए, भगवान श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के राजभोग को ठुकराकर भक्त विदुर के घर केले के छिलके खाए। भक्तवत्सल भगवान ने तपस्यारत बालक ध्रुव को दर्शन देकर उसका आलिंगन किया और उसे परमपद प्रदान किया। भक्तवत्सल भगवान अपने भक्त राजा बलि का कल्याण करने को ही स्वयं उसके यहाँ तीन पग भूमि माँगने पहुँचे। भगवान ने भक्त मीराबाई को दिए गए विष को अमृत और सर्प को तुलसी की माला बना दिया।

भगवान ने अपने भक्त नरसी मेहता का योगक्षेम वहन करने को उनका रूप धारण किया, सूरदास को गड्‌ढे से निकाला, कुबड़ी कुब्जा को ठीक किया, सदन कसाई का उद्धार किया, कर्माबाई की निष्काम भक्ति से प्रसन्न हो उनकी खिचड़ी खाई, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, तुलसीदास, रैदास आदि भक्तों को दर्शन देकर तृप्त किया।

यदि हमें भी भक्तवत्सल भगवान के प्रेम, स्नेह, अनुग्रह, कृपा को पाना है तो हमें पहले एक सच्चा भक्त होना होगा; क्योंकि सच्चा भक्त ही भगवान का प्रेम, अनुग्रह पाने का अधिकारी हो सकता है।

सच्चा भक्त होने का अर्थ है छल, कपट तज कर पूर्णरूपेण भगवान का हो जाना, भगवान की

शरण में आ जाना। सारे तर्क-वितर्क, लोभ, मोह, अहंकार को तजकर एकमात्र अपने आराध्य, अपने भगवान को ही अपना सर्वस्व मान लेना, भगवान को ही अपना परम हितैषी मानना, भगवान को ही अपना रक्षक मानना। अन्यों का आश्रय छोड़कर एकमात्र प्रभु का आश्रय ग्रहण करना, अपने कर्त्तव्य कर्म को भगवान की पूजा मानकर पूजा के भाव से करना।

हर कर्म को ईश्वर का ही मानकर करना, कर्मफल की चिंता न करके कर्म को निष्कामभाव से करना। कर्म करते हुए स्वयं को अकर्त्ता और भगवान को ही कर्त्ता मानना, स्वयं को प्रभु के हाथों का एक यंत्रमात्र मानकर कर्म करना।

सदैव सच्चाई, ईमानदारी का पालन करना, ईमानदारीपूर्वक जीविकोपार्जन करना। भगवान सर्वत्र, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिशाली और सर्वज्ञ हैं— ऐसा मानकर, जानकर सर्वत्र प्रभु की उपस्थिति का आभास करना, हर दिन, नित्य-निरंतर प्रभु का ध्यान करना, भजन करना, स्वाध्याय करना, संपूर्ण विश्व-ब्रह्मांड को भगवान की ही भौतिक अभिव्यक्ति जानकर तदनुरूप जीवसेवा करना, बुरे कर्मों से हमेशा दूर रहना आदि सच्चे भक्त होने के लक्षण हैं और ऐसे भक्तों के लिए ही भगवान भक्तवत्सल हैं।

इस संदर्भ में युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने ठीक ही कहा है कि परमेश्वर का प्यार केवल सदाचारी, निरहंकारी, निर्दोष, निश्छल, निर्मल और कर्त्तव्यपरायण लोगों के लिए सुरक्षित है। ❑

एक राजा ने पड़ोसी राज्य पर हमला किया और सीमा से जुड़े गाँवों पर कब्जा कर लिया। उसके सैनिकों को रसद की आवश्यकता हुई तो उन्होंने गाँव को लूटने का मन बनाया। उन्हें राह चलता एक किशोर दिखाई पड़ा तो उन्होंने उसे बंधक बनाकर अच्छे खेतों की तरफ ले चलने को कहा। किशोर ने उन्हें मार्ग दिखाना प्रारंभ किया। रास्ते में खेत पड़ते तो वो राजा को और आगे चलने को कहता। काफी देर चलने के बाद वो एक खेत पर पहुँचे तो किशोर ने कहा—"यहाँ से जितना चाहो अनाज ले लो।"

राजा उस पर चिल्लाया—"क्यों रे! रास्ते में और अच्छे खेत पड़े थे तो वहाँ नहीं रोककर तूने हमें बेवजह थकाया।" किशोर बोला—"पर वो खेत दूसरों के थे। मैंने सोचा कि यदि नुकसान होना ही है तो सिर्फ हमारा हो, बाकी गाँववालों को क्यों दंड मिले।" यह सुनकर राजा का सिर शरम से झुक गया, उसने अपने सेनापति को वापस चलने की आज्ञा देते हुए कहा—"जहाँ ऐसे परोपकारी नौजवान वास करते हों, उस राज्य पर कोई बुरी निगाहें नहीं डाल सकता।"

अमूल्य राष्ट्रीय संपदा हैं नदियाँ

जल जीवन है और सभी प्राणियों के रक्त-रस का संचारक भी। जल से अन्न, वनस्पतियाँ और औषधियाँ निर्मित हैं। जीवन जगत् के सभी प्रपंच जलतरंग में हैं। जल रस है और रस आनंद का स्रोत है। वैदिक इतिहास के प्रतिष्ठित ग्रंथ '**शतपथ ब्राह्मण**' में जल को प्राण कहा गया है। सृष्टि का उद्भव जल से हुआ—वात ऋग्वेद में है। 600 ईसा पूर्व यूनानी दार्शनिक थेल्स भी यही मानते थे। विकासवादी सिद्धांत के जनक चार्ल्स डार्विन का विचार भी यही है।

भारत में हजारों वर्ष पहले से ही एक सदावहार सदानीरा जल संस्कृति रही है। जल-संरक्षण सामाजिक कर्त्तव्य रहा है। जलस्रोत नमस्कारों के योग्य रहे हैं, लेकिन वीते 50-60 वर्ष से जल प्रदूषण की सुनामी हावी है। नदियाँ औद्योगिक कचरे की पेटी वन रही हैं। झीलों का वध हो रहा है। ग्रामीण जलाशय अवैध कव्जे के शिकार हैं। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की यमुना का प्रदूषण भयावह है तो 5 राज्यों में प्रवाहमान गंगा का प्रदूषण भी राष्ट्रीय वेचैनी है। इसका अविरल निर्मल प्रवाह केंद्र और उत्तर प्रदेश सरकार की कार्यसूची में भी इंगित है।

चेन्नई महानगर से होकर वहने वाली कुअम, मुंवई में प्रवाहित मीठी, पुणे की मुलामुथा, वेंगलुरु की वृषभावती, गुजरात की सावरमती, लखनऊ की गोमती और वंगाल, झारखंड की दामोदर नदी भी प्रदूषण से त्रस्त हैं। जलाशय जल संस्कृति का आभूषण रहे हैं। प्रकृति ने भारत को मनोरम वनाया है। यहाँ 3000 से ज्यादा खूवसूरत प्राकृति[k] हैं और 60-65 हजार मानव निर्मित ...

अधिकांश झीलें नगरीय कूड़े-कच... औद्योगिक कचरे से अटी पड़ी हैं। कश्मीर की ... झील सुंदर मानी जाती थी। डल झील के ... रखाव पर करोड़ों का खरच हो रहा है, लेकिन इसका आकार लगभग आधा ही रह गया है। ... को झीलों का नगर कहा जाता था। कुछ ... पहले यहाँ लगभग 300 सुंदर जलाशय थे, ... अव मरणासन्न हैं। उत्तर प्रदेश के नैमिष ... जलाशय की पौराणिक मान्यता है और इसी ... यहाँ प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु आते हैं, लेकिन ... भी जल निर्मल नहीं है।

जल पीना जैविक आवश्यकता है और ... आचमन पवित्रता की प्यास है। वैदिक मं... जलमाताओं से पवित्रता और शुद्धि की प्रार्थ... गई है—'**आपो अस्मान मातरम् शुंदयन्तु**' ... सभी जलस्रोतों पर आधुनिकता का आक्रम... देश के तमाम भागों का पेयजल भी प्रदूषित है ... पीने वाले कैंसर सहित तमाम वीमारियों के शि... हैं। शुद्ध पेयजल का संकट देशव्यापी है। हम ... संस्कृति नहीं, वल्कि नाला सभ्यता के आ... रहे हैं। अथर्ववेद में कहा गया है—"**हे सरिता... आप नाद करते हुए वहती हैं, इसीलिए आप... नाम नदी है।**"

नैनीताल उच्च न्यायालय ने गंगा-यमुना ... अव व्यक्ति माना है। पूर्वजों ने हजारों वर्ष पहले ... नदियों को प्राणवान जाना था। कोर्ट के कथन ...

प्रसन्न होने की कोई बात नहीं है। न्यूजीलैंड ने भी अपनी वांगानुई नदी को संवैधानिक दर्जा दिया है। नदियों को व्यक्ति जैसे अधिकार मिलने का कोई खास मतलब नहीं है।

बेशक यह एक शुभ संदेश है, लेकिन जलस्रोतों की हत्या का मूलभूत प्रश्न यथावत् है। क्या नदियाँ जबरदस्ती औद्योगिक विष पिलाने के विरुद्ध किसी थाने में रिपोर्ट लिखा सकती हैं? क्या वे जीवन के मौलिक अधिकार को लेकर किसी न्यायालय में याचिका दायर कर सकती हैं?

नदियाँ प्रकृति का अविभाज्य अंग हैं और हम सब भी। हम जलस्रोतों पर निर्भर हैं और जलस्रोत हम पर। वे मरेंगे तो हम भी नहीं बच सकते। पूर्वजों ने इसीलिए उन्हें माता कहा है और कोर्ट ने उन्हें व्यक्ति, लेकिन कहने भर से कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। प्रकृति दोहन की हमारी भूख अनियंत्रित है। हमने नदियों को औद्योगिक कचरे सहित सभी तरह की गंदगी डालने का सहज क्षेत्र बना दिया है।

उद्योगीकरण को लेकर भारत और यूरोपीय सोच में मूलभूत अंतर है। वे प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करते हैं, हम प्रकृति संरक्षण को कर्त्तव्य मानते हैं। उद्योगीकरण बेशक जरूरी है, लेकिन औद्योगिक कचरे को गंगा या फिर अन्य किसी नदी में ही फेंकना क्यों जरूरी है?

अधिकांश महानगर नदी तट पर हैं। गंगा तट पर 100 से ज्यादा आधुनिक नगर और हजारों गाँव हैं। नगरों-महानगरों का सीवेज गंगा जैसी नदियों में ही बहता है। उत्तर प्रदेश के कानपुर और उन्नाव के चमड़े के उद्योग हैं। इनका पानी भी गंगा में जाता है। पशु-वधशालाओं के रक्त-नाले भी गंगा में गिरते हैं।

उन्नाव और औद्योगिक क्षेत्र से निकली लोन नदी के तट पर बसे लगभग 500 गाँवों में हैंडपंप का पानी भी जानलेवा रसायनों से भरा है। जलशोधन संयंत्रों को लगाने के हजारों निर्देश आते रहे हैं, लेकिन निर्देश न मानने वालों के खिलाफ कोई कड़ी कार्रवाई नहीं हुई। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड मात्र खानापूर्ति करता है।

सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट औपचारिकता भर हैं। औद्योगिक कारखानों के जलशोधक संयंत्र दिखावटी हैं। सारे गंदे नाले गंगा की ओर ही जाते हैं। ऐसे औद्योगिक विकास में विनाश-ही-विनाश है, बावजूद इसके हम सब निष्क्रिय बने हुए हैं। नदी तट पर शवदाह या शवों को गंगा में फेंकना निर्मम है। यह किसी भी लिहाज से वैदिक परंपरा नहीं है। भारत को अपनी औद्योगिक नीति का पुनर्पाठ करना चाहिए।

नदियाँ राष्ट्र का प्राण स्पंदन हैं। हम नदियों के तट पर जल प्रदूषणकारी उद्योगों को न लगाने की नीति बनाने पर विचार करें। सभी प्रदूषणकारी उद्योगों की स्थापना को रोकना ही समस्या का समाधान है। गंगा, यमुना आदि नदियों के तट पर स्थापित सभी उद्योगों को अन्यत्र स्थानांतरित करने की नीति भी बनानी होगी।

उत्तर प्रदेश सरकार प्रदूषणकारी उद्योगों के स्थानांतरण को लेकर गंभीर है। उद्योगों को नदी वध की अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसे मसलों को किसी और दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए। सतह पर प्रवाहित नदी जल के साथ भूगर्भ जल भी प्रदूषित हो रहा है। मनुष्यों के अलावा अन्य प्राणी भी मर रहे हैं। जैव-विविधता के अस्तित्व पर संकट है।

औद्योगिक विकास का उद्देश्य राष्ट्रीय समृद्धि का संवर्द्धन करना ही होता है। जल-स्रोत और नदियाँ अमूल्य राष्ट्रीय संपदा हैं। इन्हें खोकर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारत की

सनातन प्यास है—नदियाँ बहें, निर्मल, अविरल, निर्मल, कल-कल। ऋग्वेद में वृत्त एक दानव है। मैकडनल ने उसे **'डेमन ऑफ ड्रॉट'** सूखे का निमित्त दानव कहा है। देवराज इंद्र ने उसे वज्र से मारा। ऋग्वेद में इंद्र की स्तुति है कि उन्होंने नदियों का सदा प्रवाहित मार्ग खोला है, वज्र से वृत्त को मारा है।

आधुनिक संदर्भ में नदी-प्रवाह रोकने वाले, नदी के जल में जहर घोलने वाले समूह क्या ऐसे ही नहीं हैं? बेशक वे सब भी हमारे अंग हैं, लेकिन उन्हें समय की पुकार सुननी चाहिए।

औद्योगिक हित बनाम राष्ट्रहित के मूल्यांकन में राष्ट्र सर्वोपरिता का ध्यान रखना चाहिए। एक आदर्श जल संस्कृति, नदी संस्कृति का विकास आवश्यक है।

यह काम अकेले सरकार ही नहीं कर सकती। सरकार की अपनी शक्ति है तो उसकी एक सीमा भी है। लोक की शक्ति बड़ी है। संस्कृति का विकास लोक करता है। भारत के प्राचीन इतिहास में जल, नदी और जलाशय संरक्षण और नमस्कारों के योग्य थे तो अब क्यों नहीं हो सकते? इसके विकल्प हैं ही नहीं। इसलिए संकल्प में देरी का कोई अर्थ नहीं है। ❑

राजा अरिष्टनेमि बड़े धर्मात्मा और प्रतापी राजा थे। वानप्रस्थ ग्रहण करने पर उन्होंने अपना राजपाट पुत्र को सौंपा और स्वयं गंधमादन पर्वत पर तपस्या करने में निरत हो गए। प्रचंड तप और अर्जित पुण्य की सूचना देवराज इंद्र तक पहुँची और उन्होंने उन्हें स्वर्ग आने के लिए निमंत्रण भेजा।

स्वर्ग पहुँचने पर इंद्र ने राजा से कहा—"राजन्! आपने अपना जीवन श्रेष्ठ कर्मों में लगाया और कठिन तपस्या करके आप स्वर्ग के भोगों को भोगने के अधिकारी बने हैं। आप यहाँ रहें और अकल्पनीय सुखों का भोग करें।"

राजा ने पूछा—"वे कब तक स्वर्ग में रह सकते हैं?" इंद्र बोले—"जब तक आपके पुण्यों का प्रभाव रहेगा।" राजा ने उत्तर दिया—"देवराज! ऐसा स्वर्ग मेरे किस काम का, जहाँ केवल भोग की स्वतंत्रता हो, कर्म की नहीं। मैं अपना तपस्यारत जीवन छोड़ने को तैयार नहीं, मुझे वापस जाने दें।" इंद्र राजा के चरणों में झुक गए।

प्रभुकृपा के पात्र बनें

गुरु नानकदेव सुल्तानपुर लोधी से लंबा सफर तय कर सैदपुर पहुँचे। वहाँ पर उनको लालो नाम का एक बढ़ई बाजार में लकड़ी से तैयार की गई वस्तुएँ बेचता हुआ मिला। लालो स्वभाव से बड़ा सज्जन और उदार था और वह साधु-संतों की सदैव सेवा किया करता था।

लालो गुरु नानकदेव जैसे संत को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें अपने यहाँ ठहरने को आमंत्रित किया। लालो के पवित्र भाव को देखते हुए गुरु नानकदेव ने उसके निमंत्रण को स्वीकार किया और वे भाई मरदाना के साथ लालो के घर जा पधारे।

गरीब व बढ़ई जाति का होने के कारण लोग लालो को हेय दृष्टि से देखते थे, पर लालो वास्तव में कठोर परिश्रम कर जीविकोपार्जन करने वाला व यथासंभव दूसरों की, जरूरतमंदों की सेवा हेतु तत्पर रहने वाला एक निहायत ईमानदार, सच्चा, उदार व भला व्यक्ति था।

नानकदेव अपनी दृष्टि से लालो के इन सद्गुणों को देखकर ही रीझ गए थे और उसके यहाँ पधारे थे। गरीब लालो ने गुरु नानकदेव की यथासंभव बड़ी श्रद्धा-भक्ति से सेवा की। उन्हें साधारण मोटे अनाज, बाजरे की रोटी तथा साग इत्यादि का भोजन कराया।

मरदाने को लालो के इन रूखे-सूखे व्यंजनों में भी स्वादिष्ट व्यंजनों-सा आनंद मिला। तब भाई मरदाना ने नानकदेव से प्रश्न किया कि लालो के द्वारा परोसा गया भोजन देखने में जितना नीरस जान पड़ता था, सेवन करने में वह उतना ही स्वादिष्ट कैसे हो गया?

तब नानकदेव ने कहा—"मरदाने! इस व्यक्ति के हृदय में अगाध प्रेम है, यह सच्चा और ईमानदार है व कठोर परिश्रम से आजीविका अर्जित करता है। उसी कारण उसके द्वारा परोसे गए भोजन में प्रभु कृपा की बरकत पड़ी हुई है।" यह जानकर मरदाना संतुष्ट हुए। गुरु नानकदेव कुछ दिनों तक लालो के यहाँ ही ठहरे और वहाँ मरदाने के साथ कीर्तन व सत्संग करते रहे।

उनके कीर्तन व सत्संग से प्रभावित होकर वहाँ हजारों लोग आते रहे और अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान नानकदेव से पाते रहे और तृप्त होते रहे। जाति, पंथ, संप्रदाय, मजहब से परे नानकदेव के उपदेश सबको बहुत भाते और सुहाते। नानकदेव एक गरीब व बढ़ई जाति के व्यक्ति के यहाँ ठहरे हैं और वहीं भोजन ग्रहण कर रहे हैं— यह जानकर छुआछूत में विश्वास करने वाले कुछ ब्राह्मणों को बहुत बुरा लगा।

उन्होंने सोचा कि यदि नानकदेव द्वारा प्रचारित प्रणाली से वर्ग व जातिविहीन समाज़ अस्तित्व में आ गया तो उनकी रोजी-रोटी का क्या होगा? अतः वे स्वार्थवश नानक जी को अपमानित करने व क्षति पहुँचाने की ताक में रहने लगे। यद्यपि वह वर्ग गुरु नानकदेव की विचारधारा का कटु आलोचक था, पर वे चाहकर भी नानकदेव के प्रवचनों में निहित उस सत्य-ज्ञान को झुठला नहीं पा रहे थे, जिसमें वे लोगों को सहज, सरल, पवित्र

व बंधुत्व से पूर्ण जीवन जीने की कला सिखा रहे थे।

वे जाति, वर्ण, पंथ व संप्रदाय के आधार पर लोगों से छुआछूत व घृणा को मानवता के प्रति अपराध व अधर्म बता रहे थे व लोगों को ऐसे अपराध व अधर्म से दूर रहने को प्रेरित कर रहे थे। उन्हीं दिनों मलिक भागो नाम का एक स्थानीय प्रतिष्ठित अधिकारी जो भ्रष्टाचार के कारण बहुत धनवान हो गया था, उसने अपने यहाँ ब्रह्मभोज का आयोजन किया, जिसमें उसने अन्य लोगों के साथ-साथ साधु-संतों को भी आमंत्रित किया। उसका विश्वास था कि यज्ञ की पूर्णता व सफलता के लिए कोई साधु-फकीर भोजन किए बिना न रह जाए।

उनके यज्ञ के मुख्य पुरोहित ने उसके कान भरते हुए कहा—"नगर में नानक नाम का एक साधु बहुत दिनों से एक निम्न जाति के व्यक्ति के यहाँ ठहरा है और उपदेश करता है। उसने तो धर्म-कर्म सब भ्रष्ट कर दिया है। आपके यज्ञ में आने को उसे भी निमंत्रण दिया गया था, पर वह नहीं आया। उसका कहना है कि आपका यज्ञ तो वास्तव में बड़प्पन का प्रदर्शन मात्र है, धर्म नहीं।" अहंकार में आकर मलिक ने कहा—"यदि ऐसा है तो उसे बलपूर्वक मेरे सम्मुख उपस्थित करो।"

यह आदेश पाते ही उसके लोग नानक जी को खोजकर ले आए। मलिक भागो ने नानक जी से प्रश्न किया—"देखने में तो तुम कुलीन परिवार के मालूम होते हो। तुम एक शूद्र के घर का भोजन करते हो, पर मेरे यज्ञ का नहीं। इसका तुम कारण बताओ।" नानकदेव ने कहा—"मलिक साहब! पहले आप यह बताएँ कि शास्त्रों में किसी व्यक्ति को अहंकार व बलपूर्वक भोजन कराने से मनोवांछित फल की प्राप्ति होने की बात कहीं लिखी है?"

मलिक ने कहा—"नहीं, पर जब आप लालो जैसे गरीब व निम्न जाति के व्यक्ति के यहाँ भोजन कर सकते हैं तो फिर मेरे यहाँ भोजन करने में आपको क्या आपत्ति है?"

नानकदेव बोले—"क्या आप यह बताने का कष्ट करेंगे कि लालो बढ़ई होने के कारण नीच जाति का कैसे हो गया और हम और आप ऊँची जाति के कैसे हो गए? क्या परमेश्वर ने हमारी शारीरिक बनावट में कोई अंतर रखा है?" मलिक ने कहा—"नहीं!" नानक जी ने कहा—"यदि ऐसा नहीं है तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम जात-पाँत का झूठा मनगढ़ंत ढोंग रचते हैं जो कि मानवता के नाम पर एक बहुत बड़ा अपराध है।" मलिक भागो ने पूछा—"फिर आप ही बताएँ कि नीचा कौन है तथा ऊँचा कौन है?"

नानकदेव जी बोले—"उस प्रभु ने सबको एक-सा बनाया है। वास्तव में नीच वह है, जो नीच कर्म करता है और जिसके कर्मों से समाज पीड़ित होता है तथा भ्रष्टाचार फैलता है। इसके विपरीत वही व्यक्ति श्रेष्ठ है, जो श्रेष्ठ कर्म करता है और जिसके कर्मों से समाज में सुख-शांति व समृद्धि बढ़ती है। व्यक्ति ऊँचा और नीचा जाति से नहीं, वरन अपने अच्छे व बुरे कर्मों से होता है। मेरे इस दृष्टिकोण के अनुसार भाई लालो श्रेष्ठ व्यक्ति है; क्योंकि वह श्रेष्ठ कर्म करता है, अच्छे कर्म करता है। अपने कार्य से वह समाज की सेवा करता है, वह कठोर परिश्रम कर ईमानदारीपूर्वक अपनी आजीविका अर्जित करता है। वह कभी किसी की बुराई नहीं करता। वह सदैव सबसे प्रेम करता है। पर इसके विपरीत अधिकांश बड़े कहलाने वाले लोग समाजविरोधी कार्यों में संलग्न रहते हैं, जिससे भ्रष्टाचार फैलता है तथा जनसाधारण का जीवन कष्टमय हो जाता है। इस लूट-पाट से समाज में

अमीरी-गरीबी की खाई और अधिक बढ़ जाती है। फलस्वरूप समाज में असंतोष और आक्रोश उपजता है, जिससे व्यवस्था में भी बाधाएँ उत्पन्न होती हैं एवं समाज में हिंसा, अपराध आदि बुराइयाँ पनपती हैं।''

मलिक भागो ने पूछा—''आप ही बताएँ कि आजीविका कैसे अर्जित करनी चाहिए?'' नानकदेव बोले—''मैं तो यही जानता हूँ कि व्यक्ति भले ही निर्धन हो, पर जो सत्य के पथ पर चलकर अपनी आजीविका कमाता है तथा संतोष में रहता है, वही श्रेष्ठ है और प्रभु-परमेश्वर भी उसी व्यक्ति के संग रहते हैं। प्रभु की कृपादृष्टि ऐसे लोगों पर ही रहती है। वस्तुतः जो लोग अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर अनुचित कार्य करते हैं और अनुचित धन प्राप्त कर धनी बनते हैं और अपने काले कारनामों पर परदा डालने के लिए बड़े दानी होने का दंभ भरते हैं और दिखावा करते हैं, वस्तुतः ऐसे लोग ही नीच, छोटे और बौने हैं।''

मलिक भागो को गुरु नानकदेव की बातें समझ में आ गईं। वह उनके चरणों में झुककर माफी माँगने लगा और बोला—''आपके कथन में मुझे सत्य दिखाई पड़ता है। मैं आज से आपको अपना आध्यात्मिक गुरु मानता हूँ। आप मेरा मार्गदर्शन करें।''

नानक जी उसे उपदेश करते हुए बोले—''मलिक! प्रभु की कृपा सिर्फ यज्ञ करने का दिखावा व प्रदर्शन से प्राप्त नहीं होती, वरन हमारा जीवन भी यज्ञमय होना चाहिए, तभी प्रभु की हम पर कृपा हो सकती है। प्रभु सभी में विराजमान हैं और सर्वव्यापी हैं। अतः सर्वत्र प्रभु की उपस्थिति जानकर सदैव अच्छे कर्म करो और प्राणिमात्र की सेवा करो। यही प्रभु का कृपापात्र बनने का मार्ग है। जब वह सभी में विद्यमान है तो कोई ऊँचा और कोई नीचा कैसे हो सकता है? इसका सीधा-सा अर्थ है कि जन्म से कोई भी ऊँचा या नीचा नहीं। यह सब मनुष्य के कर्मों के ऊपर निर्भर है कि वह कैसे कार्य करता है। यदि वह सद्गुणों से जीवन जीता है तो वह ऊँचा है, नहीं तो दुर्गुण उसे स्वयं नीचा बना देते हैं, भले ही वह तथाकथित ऊँची जाति का क्यों न हो। यदि तुम सचमुच ऊँचे होना चाहते हो तो ऊँचे कर्म करो, श्रेष्ठ कर्म करो। सहज, सरल व पवित्र बनो। यदि ऐसा कर सके तो तुम अवश्य ही प्रभुकृपा के पात्र बन सकोगे।''

इस प्रकार मलिक भागो को उपदेश देकर नानकदेव, भाई मरदाने के साथ अपने अगले गंतव्य की ओर चल पड़े। ❑

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका पहुँचे। कस्टम पर मौजूद अधिकारी ने उनसे उनके व्यवसाय के बारे में पूछा। रामतीर्थ हँसे और बोले—''मैं बादशाह हूँ और ये सारी दुनिया मेरी सल्तनत है।'' अधिकारी चकित हुआ और बोला—''आपके पास निज की संपत्ति के रूप में सिर्फ दो लँगोटियाँ हैं तो आप अपने को बादशाह कैसे बोल सकते हैं।'' रामतीर्थ बोले—''अरे मित्र! मैं बादशाह इसलिए नहीं हूँ कि मेरे पास अपार दौलत है या मुझे उसकी चाह है। मैं बादशाह इसलिए हूँ कि न मुझे किसी चीज की चाह है और न ही उसकी आवश्यकता। भगवान ने मुझे जैसा बनाया है, मैं उसमें पूरी तरह से संतुष्ट हूँ।''

पर्व विशेष–शारदीय नवरात्र

शक्ति-साधना का पर्व–नवरात्र

भारतीय संस्कृति उत्सवधर्मिता प्रधान है। भारतीय उत्सव–त्योहारों की अवधारणा सदैव उद्देश्यपूर्ण रही है। दीपावली को धनधान्य व समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का आह्वान पर्व माना जाता है।

नवरात्र को शक्ति–अधिष्ठात्री देवी की आराधना व शक्तिपूजा का पर्व कहा गया है। नवरात्र पर माँ दुर्गा की पूजा होती है। इसके साथ भगवान राम के पुण्य स्मरण एवं रामलीला के रूप में स्थान–स्थान पर अनेकानेक आयोजन किए जाते हैं।

भारतीय संस्कृति में जगन्माता के रूप में शक्ति की स्तुति की गई है—

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

नवरात्र पर्व पर मातृरूपा शक्ति की पूजा का आयोजन किया जाता है। इन दिनों वैयक्तिक साधना एवं सामाजिक उपासना के माध्यम से दैवी शक्ति–ऊर्जा का अधिष्ठान होता है।

आदिशक्ति के त्रिगुणात्मक रूप हैं। सात्त्विक रूप में वे सरस्वती हैं, राजसी रूप में वे लक्ष्मी हैं व तामसी रूप में वे काली हैं। सरस्वती बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। बुद्धि को शक्ति एवं ऐश्वर्य से श्रेष्ठ माना गया है, अतः प्रज्ञाशक्ति वैभव से वे कभी प्रभावित नहीं होती हैं। हमारे प्रज्ञावान ऋषियों और मनीषियों ने विश्व में जगद्गुरु के सम्मान को प्राप्त किया है। रजोमयी लक्ष्मी—श्रम, ऊर्जा एवं वैभव को देने वाली हैं। ऊर्जा, श्रम एवं श्रीसंपन्नता से राष्ट्र भौतिक चरम विकास को प्राप्त करता है। तमोमयी काली महिषासुरमर्दिनी शक्ति हैं।

महिषासुर मोह, पशुत्व एवं अज्ञान का प्रतीक है। इस पर विजय शक्ति एवं श्रम से ही संभव है। अतः शक्तिरूपा दुर्गा—काली की उपासना का विधान शक्तिसंचयन के लिए किया जाता है। त्रिगुणात्मक शक्ति अर्जित करके ही बुद्धि, श्रम, ऊर्जा एवं श्री द्वारा राष्ट्र को शक्तिसंपन्न बनाया जा सकता है। शक्ति संचयन के बृहत् अनुष्ठान का प्रारंभ नवरात्र में आश्विन एवं चैत्र माह की शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक होता है। अष्टमी को दुर्गा की विशेष पूजा होती है।

भारतीय संस्कृति में भगवान राम को मर्यादा पुरुषोत्तम का प्रतीक मानते हैं। उन्हें धर्म का प्रत्यक्ष रूप कहा गया है। श्रीराम का सामर्थ्य, शीलगुण एवं सौंदर्य से समन्वित रूप हमारे राष्ट्र का आदर्श चरित्र है। भगवान राम की लीलाओं का मंचन रामलीला है। नवरात्र के अवसर पर उत्तर भारत में बड़े स्तर पर रामलीला का आयोजन किया जाता है। मूल रूप से यह राष्ट्रीय शक्ति एवं चेतना का प्रतीक है। इसमें राष्ट्र के प्रभुत्व, बल, आत्मविश्वास, आस्था एवं विजय के भाव प्रकट होते हैं।

आज हम पर्व–अनुष्ठानों की मूल भावना को विसारते जा रहे हैं। औपचारिकता तेजी से बढ़ रही है। अतीत में हमारे देश पर पड़े सांस्कृतिक आघातों ने हमें कमजोर बनाया है। सहिष्णुता एवं **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना के अभाव ने हमारी शक्ति की अनुभूति को दुर्बल बना दिया है।

इतिहास साक्षी है कि रामायण, महाभारत काल में हमारे प्राचीन भारत में यज्ञ, जप-तप अनुष्ठानों के माध्यम से राष्ट्र सदैव शक्ति संग्रहण करता रहा है।

साधनाप्रधान नवरात्र पर्व इस शक्ति के संग्रह का प्रमुख राष्ट्रीय सांस्कृतिक पर्व है। शारदीय नवरात्र पर्व शरद के आगमन पर होता है। शरद के वर्णन से हमारा भारतीय काव्य साहित्य अत्यंत संपन्न है।

शरद में प्रकृति की धानी एवं अंचल, पुष्प वैभव से भर जाता है। पुष्पों की सुगंध, शीतल-मंद बयार, निरभ्र-निर्मल आकाश, शुभ्र चाँदनी, स्वच्छ जलधारा एवं मोहक वातावरण सभी प्राणिमात्र में अपूर्व उत्साह एवं उल्लास का संचार करते हैं।

प्रकृति का यह आनंद पूर्ण रूप से हमारे शरीर एवं मन को विशेष प्रभावित करता है। शरद को वेदों की भाषा में कहा गया है—

'वेदानां शरद माताः'

आयुर्वेद पंडितों के अनुसार शरद ऋतु रोग-निवारण, शरीर-शोध एवं कायाकल्प के लिए उत्तम समय है।

रामचरितमानस में भी शरद महक का वर्णन किया गया है—

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा।
जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा॥

इस संदर्भ में महाकवि सुमित्रानंदन पंत की रचना है—

शरद चाँदनी!
विहँस उठी मौन अतल
नीलिमा उदासिनी।
आकुल सौरभ समीर
छल-छल चल सरसि नीर,
हृदय प्रणय से अधीर
जीवन उन्मादिनी।
शरद चाँदनी!

भौतिक दृष्टि से भी धर्म के प्रमुख साधन— शरीर की रक्षा के लिए शरद ऋतु शारीरिक शक्ति संचालन का महत्त्वपूर्ण काल है। आश्विन के नवरात्र की पृष्ठभूमि में महिषासुरमर्दिनी दुर्गा एवं भगवान राम की पुण्य गाथाएँ हैं।

पुराणों के अनुसार माता पार्वती ने तपस्या से प्राप्त की अपनी अमोघ शक्ति द्वारा शुंभ-निशुंभ दैत्यों का संहार कर संसार के कष्टों का निवारण किया।

इसी प्रकार भगवान श्रीराम ने रावण का संहार कर भोगप्रधान आसुरी प्रवृत्तियों से भारतीय आर्य जीवन को मुक्त किया एवं उदात्त गुणों व आत्मिक शक्तियों के योग से आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि रावण पर विजय प्राप्त की।

उक्त प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए हमारे ऋषियों ने नवरात्रकाल को उपासना की दृष्टि से श्रेष्ठ समय बताया है।

इस समय व्रत, यज्ञ, दुर्गापाठ, रामायण पारायण, गायत्री अनुष्ठान एवं उपासना, जागरण, संकीर्तन आदि का आयोजन होता है।

यज्ञ अनुष्ठानों से पावन एवं दिव्य वातावरण का सृजन होता है। शक्ति-जागरण का यह पर्व देश के अनेक भागों में विभिन्न उत्सवों के रूप में मनाया जाता है।

बंगाल में दुर्गा पूजा, दक्षिण में सरस्वती पूजा, गुजरात में अंबा गरबा, उत्तर भारत में रामलीला प्रसिद्ध है। नवरात्र सामूहिक साधना एक ऐसा पर्व है, जिसे सामूहिक रूप से मनाने के मूल में राष्ट्रीय संगठन एवं सहकारिता की भावना भी पुष्ट होती है। □

क्या है त्याग ?

जिस हृदय में त्याग होता है, उसे अंतस् की दिव्य भावना के अनुरूप अपना नवगठन करने एवं अपने द्वारा परमात्मा के विधान अनुसार कर्त्तव्यभूमि में बरतने में कोई कठिनाई नहीं होती। त्याग एक महान घटना है, आध्यात्मिक रूप से भी और इस संसार के परिप्रेक्ष्य में भी। त्याग से जीवन में महान क्रांति घटती है एवं स्वयं के आत्मविस्तार का क्रम सहज ही होने लगता है तथा चेतना का आदि-प्रकाश एक नवरूपांतरण की दिशा में, सहज ही बढ़ चलता है। स्वरूप की विस्मृति को यदि मनुष्य त्याग दे तो इससे बड़ा त्याग कुछ नहीं हो सकता है।

अन्य विविध बातों के त्याग का अवसर तो सहज ही प्राप्त होता है, परंतु परमात्मा के विधान के अनुसार त्याग तो वास्तव में निजस्वरूप की प्राप्ति ही है। श्रेष्ठता किसमें है, पदार्थ के संसर्ग से उपजी सांसारिक विषय-कामना में या त्याग के प्रगटन से उपजी सच्ची आत्मवृत्ति में। त्याग एक महान अवलंबन है, जिसके प्रताप से नवजीवन एवं नवआलोक की प्राप्ति होती है। त्यागमूलक भावना से विषय-विकार तो कटते ही हैं, साथ में अंतरंग के दिव्य प्रकाश का शुभागमन भी होने लगता है।

त्याग एक आंतरिक अनुसंधान की कला है। इसके परिमाप में जीवन शुद्ध एवं निर्विकल्प रूप से, आत्मा का प्रतिपक्षी होकर इंद्रियगत सभी मतभावों में निर्लिप्त एवं मनोनिग्रही हो उठता है। जिस मन पर इंद्रियों की छाप न पड़े, ऐसा मन ही वास्तव में शुद्ध सरोवर के दिव्य स्थान में रंगीकृत होने के योग्य होता है तथा उसे उस दिव्य परिकर में अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप का बोध प्राप्त होता है तथा यहीं से जीवन निर्विकल्प रूप से प्रकाश एवं आरोहण के क्रम में सधता हुआ, अपनी वास्तविक संपदा आत्मरूप को प्राप्त होता है।

जिस क्षण त्याग से आविष्कृत इस संभावना को मनुष्य प्राप्त कर लेता है, उसी क्षण उसके जीवन में वास्तविक क्रांति के स्वर एवं आत्मा की महानता के अनुरूप जीने का अवसर प्राप्त होता है। मनुष्य होकर यह हमारा गौरव है कि इस सच्चे दृष्टिकोण को प्राप्त कर लिया जाए एवं तब भौतिक जगत् की सभी गतिविधियों में एक उस आत्मा के ही दर्शन होने लगते हैं, जिसे योगियों ने सदियों से सराहा है, अपनाया एवं पहचाना है।

जिस दिन मनुष्य पूर्ण निश्चल भाव से इस आत्मा की प्रार्थना में जुट पड़ेगा, उसे अंतर्निहित दिव्य केंद्र के स्वभाव एवं विलक्षण परिणति की अनुभूति प्राप्त होगी। तब वह इस दर्शन के प्रतिफलस्वरूप एक दिव्य अनुसंधान एवं परिष्कार की यात्रा पर बढ़ चलेगा एवं तब जीवन की कोई भी कठिनाई सतही परिणतियों के समान दिखाई पड़ेगी, तथा इस एक अवलंबन द्वारा उसे आंतरिक जगत् के पर्यवेक्षण एवं अपनी अमूर्त सत्ता को मूर्तरूप देने का अवसर प्राप्त होगा।

त्याग विषयों का कीजिए, कर्त्तव्यों का नहीं; मन की मलिनता से उपजी पदार्थ-भावना का करिए, स्व-परिष्कार के सुदृढ़ संकल्प का नहीं; आत्मा की सत्ता के विद्रोह में खड़ी अनेकानेक वृत्तियों का करिए, स्वयं के उत्थान के पथ का नहीं। जब त्याग आत्मा के स्तर पर होगा तो उसे आत्मपरिष्कार के महान संकल्प को पूरा करने में कोई बाधा नहीं रहेगी। यही त्याग का मूल चिंतन है एवं जीवन के उत्थान का प्रगति-पथ भी। ❑

आदर्श की पराकाष्ठा भगवान राम

जन्मभूमि अयोध्या में सदियों की प्रतीक्षा के बाद राम भगवान की स्थापना के साथ जैसे एक अँधेरे युग का समापन हुआ और एक नए युग का शुभारंभ हो गया। राष्ट्र की आत्मा जैसे सदियों की तमस् निद्रा के पश्चात जाग उठी, जिसकी चेतना से पूरे राष्ट्र एवं विश्व में फैले भारतवंशियों तथा सनातन धर्मावलंबियों के बीच एक सांस्कृतिक-आध्यात्मिक चेतनता का संचार हुआ।

निश्चित रूप से ये पल सबके लिए गौरव के, जश्न के, उत्सव के रहे। 22 जनवरी, 2024 इतिहास के पृष्ठों में स्वर्ण-अक्षरों में अंकित दिवस हो गया। असंख्य रामभक्तों का तप-त्याग, बलिदान, सेवा एवं भक्ति का भाव इसके साथ जैसे फलित हो उठा।

भगवान श्रीराम की प्राण-प्रतिष्ठा मात्र एक मंदिर के निर्माण का कार्य नहीं था, यह राष्ट्रीय चेतना के जागरण का महापर्व जैसा रहा, जिसमें शहर, कस्बों से लेकर गाँव के हर घर, मुहल्ले एवं महानगरों में उत्सव का वातावरण दिखा।

जगह-जगह भजन-कीर्तन, जयकारों की गूँज के साथ लोगों की आँखें नम थीं। लगा जैसे घर-घर में राम आ गए। जैसी प्रसन्नता भगवान राम के वनवास के पश्चात अयोध्या वापस लौट आने पर हुई थी, कुछ ऐसा ही दृश्य इस बार दिख रहा था। पूरा देश दीपों की असंख्य कतारों के साथ जगमगा रहा था। हर घर में दिए जले और हर मन-मंदिर इनके आलोक से प्रकाशित था। निस्संदेह रूप में भगवान श्रीराम राष्ट्रीय जीवन में इस कदर घुले-मिले हैं, कि इनके बिना राष्ट्रीय जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

पूर्व हो या पश्चिम, उत्तर हो या दक्षिण—राम सबको जोड़ने वाले सांस्कृतिक-आध्यात्मिक सेतु हैं। जीवन के प्रारंभ से अंत तक और मध्य में सभी चरण रामनाम के साथ ही पूर्ण होते हैं। अभिवादन में राम-राम, कार्य के प्रारंभ व अंत में जय श्रीराम तथा जीवन के अंतिम समय रामनाम सत्य जैसे उद्बोधन इसके जीवंत उदाहरण हैं।

जीवन में अनिर्णय के पलों में रामनाम ही तारक मंत्र के रूप में काम आता है, जब गोस्वामी तुलसीदास जी के ये शब्द सहज ही गूँज उठते हैं—

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा॥

वस्तुतः श्रीराम राष्ट्र के हृदय में बसे हुए हैं। स्वयं भगवान शिव भी राम की आराधना करते हैं। वास्तव में दोनों एकदूसरे के बिना अधूरे हैं। राम के ईश्वर शिव हैं तो शिव भी राम की ही माला जपते रहते हैं।

यही संबंध शिव के अंशावतार हनुमान जी का है, जो सतत रामनाम को जपते रहते हैं और भगवान राम भी उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञ भाव से भरे हैं। भगवान राम हनुमान जी के आदर्श हैं, इष्ट हैं, आराध्य हैं। वीर बजरंगी हनुमान जी की महिमा राम रसायन के बिना अधूरी है। मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में भगवान श्रीराम वास्तव में देश के आदर्श हैं।

एक आदर्श पुत्र, एक आदर्श भाई, एक आदर्श शिष्य, एक आदर्श पति, एक आदर्श शासक, एक

आदर्श तपस्वी, एक आदर्श इनसान—सभी भूमिकाओं में आदर्श की पराकाष्ठा श्रीराम में देखने को मिलती है।

उनका जीवन सत्य, सदाचार, मर्यादा, करुणा, दया और धर्म से ओत-प्रोत है। धैर्य और सहनशीलता की तो उनमें पराकाष्ठा है। हर वर्ग और जाति के लोगों के साथ भगवान राम की मित्रता की मिसाल जुड़ी हुई है चाहे वे निषादराज हों या विभीषण, केवट हों या सुग्रीव। मानव से लेकर दानव एवं पशु-पक्षी सभी उनकी आत्मीयता के स्पर्श से कृतकृत्य होते हैं। आश्चर्य नहीं कि अध्यात्म पथ के पथिकों के भी भगवान श्रीराम आदर्श हैं।

सर्वप्रथम वे हनुमान जी के आराध्य, इष्ट, भगवान हैं। सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों में असंख्य भक्तों को तारने वाले श्रीराम ही रहे हैं। रामनाम ने कितनों को भवसागर से पार उतारा है। सबसे बलशाली भक्त हनुमान के साथ लक्ष्मण, सुग्रीव, शबरी से लेकर कबीर, तुलसी, गांधी जी आदि राम के नाम की महिमा का ही विस्तार हैं।

यही नहीं रावण भी अंतिम समय में राम का नाम पुकारकर अपना लोक-परलोक सुधारता है। रामनाम के प्रभाव से तो पत्थर भी तैरने लगते हैं। वाल्मीकि रामायण में जहाँ उनके जीवन का जीवंत चित्रण होता है, वहीं तुलसीदासकृत रामचरितमानस में जन-जन के बीच भगवान राम के भक्तिमयी आदर्श की प्रतिष्ठापना होती है, जिसकी चौपाइयों का मंत्रवत् प्रयोग किया जाता है।

वस्तुतः श्रीराम विविध रूपों में मानने वालों को मंत्रमुग्ध करते हैं।

एक राम दशरथ का बेटा,
एक राम घट-घट में लेटा।
एक राम है जगत् पसारा,
एक राम है जगत् से न्यारा॥

अर्थात मनुष्य के रूप में राम दशरथ के घर पैदा होते हैं। एक राम हर प्राणी के अंदर आत्मा के रूप में विद्यमान हैं। एक राम संपूर्ण जगत् में व्याप्त हैं और एक राम सकल जग से अलग हैं अर्थात समस्त ब्रह्मांड के रचयिता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता हैं। इस तरह मानव से लेकर ईश्वर-ब्रह्म तक रामनाम की महिमा व्यापती है।

आश्चर्य नहीं कि एक आदर्श समाज एवं राष्ट्र की परिकल्पना भगवान राम के नाम से जुड़कर सहज ही रामराज्य के रूप में सामने आती है। जिस यूटोपिया की, आदर्श राज्य की बात की जाती है, रामराज्य उसका प्रतीक है। ऐसा राज्य—जहाँ कोई कष्ट, अभाव, अन्याय से दुःखी-पीड़ित नहीं होगा, प्रताड़ित नहीं होगा। जहाँ सबकी आधारभूत आवश्यकताएँ पूर्ण होंगी। सबके साथ एक जैसा व्यवहार होगा। किसी के साथ अन्याय नहीं होगा, भेदभाव नहीं होगा। सबके अधिकारों की रक्षा होगी और सबको आगे बढ़ने के समान अवसर मिलेंगे। सब मिल-जुलकर रहेंगे। स्व-स्फूर्त, नैतिकता और आत्मानुशासन के दायरे में जीवन का यापन करेंगे।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामराज्य की कल्पना करते हुए राजा के लिए कुछ गुणों का उल्लेख किया है, यथा—शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट नीति पर चलना, धर्मशील होना, प्रजापालक होना, सज्जन एवं उदार होना, स्वभाव से दृढ़ होना, दानशील होना आदि। श्रीराम में आदर्श राजा के ये सभी गुण विद्यमान हैं। उनको अपनी प्रजा प्राणों से भी अधिक प्रिय है। प्रियजन, पुरजन, गुरुजन सबके प्रति राम का व्यवहार आदर्श एवं धर्म के अनुकूल है।

ऐसे रामराज्य में किसी प्रकार की विषमता टिक नहीं सकती और सभी प्रकार के दुःखों से प्रजा को त्राण मिल जाता है। यह रामराज्य की एक

आदर्श परिकल्पना है, जिसकी आज महती आवश्यकता है।

वस्तुतः ऐसा रामराज्य अवश्य आएगा, जब भगवान श्रीराम हर हृदय में वास करेंगे। जन-जन के मन में विद्यमान दुर्भावना मिटेगी, श्रेष्ठ भाव जाग्रत होंगे, जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा होगी। व्यक्ति के अंतःकरण में यह परिवर्तन होते ही स्वतः ही ये संस्कार परिवार में विस्तृत होंगे, समाज में विस्तारित होंगे, जिसका सम्मिलित परिणाम राष्ट्रीय जीवन में एकता, समता, सरसता और शुचिता से युक्त रामराज्य सतयुग के रूप में उभरेगा। इसी के साथ पूरे विश्व में सुख-शांति, सद्भाव-सौहार्द और खुशहाली का नया अध्याय जुड़ेगा। ❑

एक व्यक्ति संत कबीर के पास पहुँचा और उनसे प्रश्न करने लगा—"सुखी दांपत्य जीवन का क्या रहस्य है?" कबीर बोले—"अभी थोड़े समय में समझाता हूँ।" कुछ समय पश्चात कबीर ने अपनी पत्नी को आवाज लगाई—"यहाँ बड़ा अँधेरा है, जरा दीपक तो रख जाओ।" उनकी पत्नी आईं और एक दीपक चौखट पर रख गईं। उस आदमी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कमरे में काफी प्रकाश होते हुए भी कबीर ने पत्नी को बुलाया और वो भी बिना प्रतिवाद के दीपक रखकर चली गईं।

थोड़ी देर में उनकी पत्नी दोनों के लिए भोजन रख गईं। जब दोनों ने खाना आरंभ किया तो संत कबीर की पत्नी ने आकर पूछा—"खाने में कुछ कम तो नहीं है।" कबीर ने उत्तर दिया—"बिलकुल नहीं! खाना बेहद स्वादिष्ट बना है।" उस आदमी को अचरज हुआ कि सब्जी में नमक कम होते हुए भी कबीर ने भोजन की प्रशंसा की।

अब संत कबीर उस व्यक्ति को संबोधित करते हुए बोले—"अब समझ में आया कि सुखी दांपत्य जीवन का क्या रहस्य है? इसको पाने का एक ही सरल मार्ग है कि हम एकदूसरे के साथ तालमेल बिठाना सीखें। एकदूसरे की कमियाँ निकालकर उनको नीचा दिखाने के बजाय यदि हम उनके गुणों को प्रश्रय दें तो गृहस्थ एक तपोवन बन जाए।"

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

महान गांधीवादी और देशभक्त महादेव देसाई

भारत 15 अगस्त, 1947 को आजाद हुआ था। इसी दिन 5 वर्ष पूर्व एक महान राष्ट्रभक्त महादेव देसाई की जेल में मौत हो गई थी। उन्हें इतिहास में **'गांधी के सचिव'** के रूप में जाना जाता था। महादेव देसाई प्रशिक्षण के लिहाज से तो एक वकील थे, मगर आचरण से वे अध्येता थे।

अगस्त, 1917 में आश्रम में आने से थोड़ा पहले गांधी जी ने महादेव से कहा था—"तुम बिलकुल ठीक उसी तरह के युवा हो, जिसकी मैं 2 वर्षों से तलाश कर रहा था।" उन्होंने उनमें 3 विलक्षण चीजें देखीं नियमितता, ईमानदारी और बुद्धिमत्ता। गांधी जी ने महादेव से कहा—"तुम्हारे रूप में मुझे ऐसा व्यक्ति मिल गया, जिसकी मुझे तलाश थी। ऐसा व्यक्ति जिसे आसानी से मैं 1 दिन अपना सारा काम सौंप सकूँ और मैं जिस पर पूरे विश्वास के साथ भरोसा कर सकूँ।"

9 महीने बाद गांधी ने महादेव को लिखा—"तुमने खुद को मेरे लिए अपरिहार्य बना दिया है...। तुम्हारी क्षमता और तुम्हारे चरित्र के कारण मैंने तुम्हें राजनीतिक कार्य में मदद के लिए चुना और तुमने मुझे निराश नहीं किया है और इसके साथ ही बहुत ही प्रेम से तुम मेरे लिए खिचड़ी भी बना सकते हो।" इसके बाद फरवरी, 1919 में गांधी जी ने अपने भतीजे मगनलाल से कहा—"महादेव मेरे लिए हाथ-पैर के साथ ही मेरे मस्तिष्क जैसा है, उसके बिना तो ऐसा लगता है, मानो मैंने अपने पैर और आवाज खो दी है। उसके बारे में जितना अधिक मुझे पता चलता है, उतना ही अधिक उसके गुणों से परिचित होता जाता हूँ। वह जितना विद्वान है, उतना ही भद्र है।"

करीब 25 वर्षों तक महादेव गांधी जी के सबसे करीबी सहयोगी और विश्वासपात्र थे। इस अवधि में महादेव, गांधी जी के लिए जवाहरलाल नेहरू और वल्लभभाई पटेल से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थे।

गांधी जी के शब्दों को लिपिबद्ध करने और उनकी चिट्ठियाँ लिखने के साथ ही महादेव ने उनके दुभाषिए, यात्रा प्रबंधक, वार्त्ताकार और जेल के सहयात्री होने के साथ ही जरूरत पड़ने पर उनके रसोइए तक का काम किया।

वे अपने मार्गदर्शक से कहीं अधिक विद्वान थे और समाजशास्त्र, साहित्य और इतिहास के बारे में उनसे निरंतर वार्त्ता करते थे। सिद्धांत और राजनीति के मुद्दों पर अक्सर महादेव की गांधी जी से बहस होती थी और कई बार वे उन्हें मन बदलने को राजी कर डालते थे।

9 अगस्त, 1942 को बंबई में भारत छोड़ो आंदोलन के पारित होने के कुछ देर बाद महादेव देसाई और महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें पूना के आगा खान हाउस में कैद कर रखा गया था, जहाँ 6 दिन बाद हृदयगति रुक जाने से महादेव की मौत हो गई।

उस समय उनकी उम्र सिर्फ 50 वर्ष थी। महादेव देसाई की मौत की खबर को जेल से बाहर आने में थोड़ा वक्त लगा, मगर जैसे ही खबर पता चली, पूरे देश में श्रद्धांजलियों की लहर आ गई। संग्रहालयों में

महादेव देसाई की मौत के बाद उनकी पत्नी दुर्गा, उनके बेटे नारायण या गांधी जी को संबोधित 300 से अधिक पत्र और टेलीग्राम रखे हुए हैं।

ये पत्र गुजराती, हिंदी, अँगरेजी और मराठी के साथ तमिल में भी लिखे गए। ये पत्र और टेलीग्राम जिन्होंने भेजे थे, उनमें गुजराती मित्र मंडली, सिकंदराबाद, मादुरा, नेल्लोर, चिदंबरम, जलगांव, थाणे और अंधेरी के जिला बोर्ड, बॉम्बे यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र विभाग के कर्मचारी और छात्र, धुलिया और वलसाड़ के सहकारी बैंक, अहमदाबाद की बार असोसिएशन, सूरत की साहित्य सभा के प्रतिनिधि थे।

पूना पत्रकार संघ और पंजाब स्टूडेंट्स फेडरेशन के प्रचार सचिव भी उसमें शामिल थे, जिन्होंने नारायण देसाई को लिखा—''आपके पिता का निधन राष्ट्र के लिए अपूरणीय क्षति है। भारत आज बौद्धिक रूप से 4 दिन पहले की तुलना में विपन्न हो गया है।''

इन सबमें सबसे मार्मिक पत्र भेजा था दिल्ली के एक कांग्रेस कार्यकर्त्ता की पत्नी ने, जिनके यहाँ महादेव अक्सर ठहरते थे। यह महिला उन्हें भाई मानती थी और उसने उनके स्नेह और उनकी विद्वत्ता को याद किया था।

उसने लिखा—''हम क्या सारा भारत उनके लिए रोता है। जब तक हिंदुस्तान और महात्मा जी का नाम रहेगा, तब तक महादेव भाई भी जिंदा रहेंगे।'' 75 वर्ष बाद आज भारत स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश है, गांधी जी को याद किया जाता है और उन्हीं के साथ महादेव भाई का योगदान भी याद आता है।

इस दौर में उन्हें बहुत कम याद किए जाने की एक वजह यह भी है कि वे बहुत संकोची थे। मगर गांधी जी जानते थे कि उनके खुद के लिए और उनके आंदोलन के लिए महादेव देसाई का क्या महत्त्व था।

सितंबर, 1938 में जब काम की अधिकता से महादेव भाई बहुत थक जाने के बावजूद छुट्टी लेने को राजी नहीं हुए तो गांधी ने उन्हें लिखा—''क्या हम यह कहेंगे कि तुममें काम करने की सनक थी? क्या तुम नहीं जानते कि यदि तुम अशक्त हो गए तो मैं बिना पंखों का पक्षी बन जाऊँगा। यदि तुमने बिस्तर पकड़ लिया तो मुझे अपना तीन-चौथाई काम समेटना पड़ेगा।''

संभवतः किसी और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ने अपने 'सचिव' का इतने सच्चे और इतने अच्छे शब्दों में आभार नहीं जताया होगा। गांधी जी के लिए किसी और की तुलना में भारत का महत्त्व था और महादेव भाई के लिए किसी और की तुलना में गांधी जी का। □

पथ्यमौषधसेवा च क्रियते येन रोगिणा।
आरोग्यसिद्धिर्दृष्टास्य नान्यानुष्ठितकर्मणा॥

—विवेक चूड़ामणि, 55

अर्थात पथ्य और औषधि का सेवन करने वाला रोगी ही आरोग्य लाभ प्राप्त करते देखा गया है, न कि किसी और के द्वारा किए हुए (औषधादि सेवन) कर्म से वह नीरोग होता है। इसी प्रकार आत्मकल्याण के लिए स्वयं ही प्रयास करना होता है।

यज्ञ : एक योग-साधना

यज्ञ के मूल में जो सूक्ष्म तत्त्व है, वह एक ऐसी चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे ब्रह्मांडीय कहा जा सके। यज्ञ उतना स्थूल उपचार नहीं, जितना वह अंतरंग के भावों को निर्मित करने एवं उन्हें परिशोधित करने में सहायक है। हम यज्ञ को इस प्रकार समझें कि इससे आत्मिक-उन्नति तो होती ही है, साथ में शारीरिक-मानसिक लाभ भी बहुसंख्यक मिल जाया करते हैं; जिनमें सर्वप्रथम श्वास संबंधी रोगों का उच्छेदन है।

हम यदि नियमित यज्ञ करें तो हमें कोई भी आधि-व्याधि सता नहीं सकती हैं। उसमें विद्यमान सूक्ष्मपदार्थ व्यक्ति के समग्र स्वास्थ्य हेतु अत्यंत ही लाभकारी हैं। यज्ञ से हमें प्राणवायु मिलती है तथा शरीर के अंगों से संबंधी रोग के विषाणु दूर होते हैं। वह अत्यंत ही लाभकारी कृत्य है, इससे अनेकों लोगों के मानसिक दोषों एवं शारीरिक उपद्रवों का शमन हुआ है।

वह महान औषधि है, इस अर्थ में कि जिस यज्ञ में सृष्टि को निर्मित करने की क्षमता है, वह उसके अंग-विकार को भी दूर कर सकता है। यज्ञ क्या है? चेतना का एक सूक्ष्मप्रवाह, जिसे हम यहाँ भौतिक रूप से स्थूलयज्ञ का नाम देते हैं। हम यह समझें कि यज्ञ किया क्यों जाता है, कामनापूर्ति के लिए या विषयों की तृप्ति के लिए या इसका कोई और प्रयोजन है, जिसे समझे बिना यज्ञरूपी पुण्यकृत्य का संपूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो सकता है।

यज्ञ एक महान कर्म है, जिसे जिसने भी जाना वह इसके विशेष लाभों से वंचित न रहा। यज्ञ के द्वारा चिकित्सा-उपचार होते तो हैं, परंतु वे उसी सीमा तक कारगर हैं, जितना कि वह अंतश्चेतना को जाग्रत करे। यज्ञ में मैं का भाव नहीं रहता है, वह एक अत्यंत ही शुभ कर्म है। उसके द्वारा व्यक्ति की अहंता समष्टि में विचरण कर सारे जगत् का हित देखती है, यज्ञ पुण्य-लाभ है।

इसे जिसने भी किया है, वह धन्य-निहाल हुए बिना न रहा। यज्ञ में समाहित सत्प्रेरणाएँ एवं विधि-उपचार उसे भारतीय संस्कृति के गौरव के अनुकूल विशेष स्थान देते हैं। यज्ञ चेतना के ऊर्ध्वगमन का विज्ञान है। जब हम कहते हैं कि यज्ञ एक योग-साधना है तो उसका अर्थ उन विशिष्ट क्रियाकृत्यों से है, जिनसे चेतना शुभ, मंगल एवं कल्याण को प्राप्त करती है।

चेतना की गहरी परतों में यज्ञ का तत्त्वदर्शन समाहित है। उसे जिन भी ऋषियों ने बनाया वे जानते थे कि मानव-चेतना के संपूर्ण विकास हेतु एक ही कारगर सत्य है, उसे बाह्य विधि-प्रक्रियाओं में उस तत्त्व के दर्शन कराए जाएँ जो कि जीवन को नवनिर्मित कर उसे चेतना के गुणोत्थान में लगाता है।

हम यज्ञ से यह समझें कि यज्ञ कोई बाह्य क्रियाकांड भर नहीं है। यह तो संपूर्ण रूप से आदमी की चेतना का विसर्जन है, इसमें वे तत्त्व समाहित हैं जो उसे ऊर्ध्वगमन की प्रेरणा दें, सत्प्रवृत्तियाँ जगाएँ तथा उसे उसके महान वैभव का परिचय प्राप्त कराएँ।

जैसे कि यज्ञ में आप आहुति डालते हैं, तो क्या वह आहुति सीधे देवताओं तक पहुँच जाती

है? नहीं, यज्ञ का तत्त्वदर्शन कहता है कि पहले इंद्रियों को शुद्ध करो, भावनाओं में निर्मलता लाओ, चरित्र को महान बनाओ तथा अपने हृदय में समाहित प्रेरणा को उद्घाटित करो। जिस भी रूप में आपका देवत्व जाग्रत होता हो वही यज्ञ की विधा है।

उसके लिए किसी विशेष विधि-प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं, परंतु जिस तत्त्वदर्शन से यज्ञ का उद्भव हुआ है वह यही कहता है कि मानसिक क्रियाओं की अपनी उपयोगिता है। आप सीधे परमात्मा को प्राप्त करने नहीं निकल सकते हैं, पहले यज्ञ को समझिए, उसे जीवन में उतारिए तथा उसके महान सत्परिणाम से स्वयं लाभान्वित होइए।

यज्ञ जैसे-जैसे आपके जीवन में समाहित होता जाएगा, आपका जीवन उसी अनुपात में दिव्य भावना से खिल उठेगा। वह आपको पूर्ण निश्चल-मन की उपाधि प्रदान करेगा, आप ऐसे बन जाओगे जैसे स्वर्ग के देवता, चेतना का आरोहण कितना समीप एवं सघन होता जाएगा, इसे देखकर आप स्वयं आश्चर्यचकित हो जाएँगे। यही यज्ञ का तत्त्वदर्शन है एवं उसकी प्रज्ञा को जाग्रत करने का शुभ-मंत्र भी।

आपने जितने यज्ञ किए होंगे आप यह समझिए कि यज्ञ एक चेतनात्मक प्रशिक्षण है। इसके माध्यम से मानव अंतराल में समाहित दिव्य तत्त्वों को उजागर किया जाता है, तथा जीवन के संपूर्ण निर्माण की प्रेरणा यज्ञ के विभिन्न अंग-उपांगों में है।

यज्ञ जैसा कोई कृत्य नहीं, यह मानवीय मर्यादाओं को समझाने वाला, चरित्र को विकसित करने वाला तथा आदमी की अंतरात्मा को झकझोर कर उसे सुपथ की दिशा में ले चलने वाला महाविज्ञान है। इसकी प्रस्तुति से अनेकों ने आदर्श प्रेरणाएँ ग्रहण की हैं, मात्र स्थूल-उपचार नहीं यज्ञ का एक आध्यात्मिक एवं मनो-शारीरिक महत्त्व भी है। यह उन तत्त्वों को एकत्रित करता है, जिनके द्वारा मानव देवत्व की उच्चतर सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ परम कल्याण को प्राप्त करता है।

इसके द्वारा आधि-व्याधियों के नाश के साथ चेतना की स्फुरणा उन अदृश्य तत्त्वों का संग्रहण करती है, जिन्हें कहीं-न-कहीं हम अपने भीतर समाहित करते हैं। यह प्रकृति-पूजा का विधान नहीं, इसके मूल में वे सत्प्रेरणाएँ हैं, जिनके आधार पर महामानव गढ़े जाते हैं।

कहने को तो आचमन और शिखावंदन में कुछ खास नहीं, दोनों शारीरिक क्रियाएँ हैं, परंतु जिस भाव से ओत-प्रोत हो इन्हें किया जाता है, वह इन्हें विशेष अवसर प्रदान करता है। चेतना का कल्याण करने चेतना की ही कोई उच्च-उमंग कारगर हो सकती है।

यज्ञ वह तत्त्वदर्शन है, जो मानव कल्याण के लिए जन्मा है। इसमें अनेकों विशिष्टताएँ हैं, इसका स्रोत अग्नि का वह प्रचंड तेज है, जिसके बलबूते आदर्श व्यक्तित्व के गठन की प्रेरणाएँ मिला करती हैं।

अग्नि पवित्रता, प्रखरता है एवं संघर्षशीलता की प्रतीक है। जो बाधाओं से कभी न डरे, चल-विचल न हो तथा जिसे सूर्य की तरह प्रकाशित होना है, वही अग्नि का वरण कर सकता है। इस अग्नि में मानव-कल्याण की प्रेरणा समायी है, विश्व के मंगल का उद्घोष है तथा चरित्र की महानता का रसगान।

अग्निरूपी ज्योति को प्रज्वलित कर हमें महान संतोष की प्राप्ति होती है। यह उन गुणों को विकसित करती है जो कि प्रसुप्ति में छिपे पड़े थे। अग्नि से अंधकार दूर होता है, परंतु उससे भी महत्त्वपूर्ण है, इसका आदर्श प्रयोजन। जिस अग्नि में ध्वंस एवं निर्माण दोनों की क्षमता है, वह यदि हमारे अंतःकरण में जाग जाए, उच्च उमंगों से हमें सराबोर करे तथा

हमारी प्रेरणा को स्व-विकसित तथा स्व-अनुवर्ती बनाए तो ही अग्नि का प्रयोजन पूरा होता है।

इस अग्नि के सदृश हमारी आत्मा बने तथा हम भी लोक-कल्याण के मार्ग पर निकल पड़ें, यही वैदिक अग्नि की रूपरेखा है। इसके साथ ही जल का सिंचन एक अद्‌भुत महत्त्व रखता है, हम जल को चढ़ाते नहीं, बल्कि वह अंतस्थ हृदय-केंद्र से उठ रही ईश्वरीय-प्रेरणा का प्रतिचिह्न है। यज्ञरूपी पावन अग्नि को जल का सिंचन प्राप्त हो, ये यही कहता है कि हम परमात्मा के निकट-स्वरूप को पहचानें एवं अपने जीवन को धन्य बनाएँ।

जैसे जल आत्मशुद्धि का प्रतीक है तो वैसे ही अग्नि उस प्रचंड तेज की, जिसमें मानवीय व्यक्तित्व समाहित हो जाना चाहिए। जल में पात्रता है तो अग्नि में ऊँचे उठने की लालसा। जल यह दरसाता है कि हमारा जीवन कैसे निर्मल, निरहंकारी एवं पाशविक प्रवृत्तियों से मुक्त होना चाहिए, तो अग्नि का स्वरूप है हमारा अंत:करण, जो कि तप-तेज-आरोग्य से बलवान हो उठे।

हम ऐसे बनें, जैसे पावन हिमालय; हृदय का उद्‌गार ऐसा हो, जैसी गंगा हैं तथा सर्वस्व में समाहित सूर्य की प्रेरणा हमारे हृदय में हो। यज्ञाग्नि में वह बल है, जो क्षुद्रता को मिटा सके; आत्म को अभितप्त एवं दैवी-शृंगार से पूरित करे। हमारा जीवन उस महान प्रेरणा के अनुरूप बन पड़े, जिसे चरित्र के विकास का पर्याय तथा दूसरों के हित जीवन समर्पित करने की नीति कहा जा सके।

हम उसे अपनाएँ जो कि सत्य है, हमारी आत्मा का यथार्थ स्वरूप है एवं उसकी एकमात्र प्रेरणा-भव-बंधनों से मुक्ति एवं समष्टि का कल्याण कहलाए। जब ऐसा होगा, तभी अग्निरूपी प्रचंड तेज एवं सत्साहस हममें उभर पाएगा, तथा हम उस अनुसार बनेंगे जिसे यज्ञ की प्रेरणा कहा जा सके। इस अर्थ में यह यज्ञ एक योग-साधना है, जिसमें चरित्र को विकसित करने का तो मंत्र है ही साथ ही आदर्श प्रयोजन के निमित्त उठ-खड़े होने का भाव-भरा संकल्प भी सन्निहित है।

यज्ञ की अन्य प्रेरणाएँ जैसे प्राणायाम, स्तुति-क्रम तथा पूर्णाहुति भी इसी उद्‌देश्य से बने हैं कि हम उनमें समाहित दैवी तत्त्व को पहचान सकें तथा उन्हें जीवन में उतारें। यही यज्ञरूपी शुभ कृत्य की प्रेरणा है, जो कि अपने आप में एक योग समग्र साधना है। ❑

प्रसिद्ध संत उड़िया बाबा गंगा के घाट पर बैठकर श्रद्धालुओं को आध्यात्मिक सत्संग का लाभ देते थे। रोज उनके सत्संग के समय एक गरीब सफाई करने वाला व्यक्ति जिसका नाम चिम्मन था, वह भी गुजरा करता था। बाबा की बातें सुनकर उसका भी मन होता कि वह बाबा से पूछे कि उसे भगवान कैसे मिलेंगे, परंतु अपनी सामाजिक स्थिति के विषय में सोचकर वह मन मसोसकर रह जाता था। उसकी इस भावना को बाबा ने भाँप लिया और उन्होंने उसे एक दिन आवाज देकर बुलाया और बोले—"बेटा! भगवान भक्त की जाति पूछकर थोड़े ही आते हैं, वे तो उसकी पुकार की तीव्रता सुनकर आते हैं। तू उनको दिल लगाकर बुलाया कर, वे दौड़े चले आएँगे।" बाबा की बातें सुनकर उसका जीवन बदल गया।

गृहस्थ एक तपोवन है

भारतीय संस्कृति में गृहस्थ का विशेष स्थान रहा है। आश्रम-व्यवस्था में इसकी केंद्रीय भूमिका रही है। एक सद्‌गृहस्थ के घर से ही सुपात्र ब्रह्मचारी तैयार होते रहे हैं और एक सद्‌गृहस्थ अपने पारिवारिक दायित्व को पूरा करते हुए एक श्रेष्ठ वानप्रस्थी के रूप में समाज की सेवा करता रहा है। वही प्रकारांतर में संन्यास धर्म का पालन करते हुए जीवन के चरम पुरुषार्थ को साधता रहा है।

संक्षेप में सभी आश्रम सद्‌गृहस्थ के द्वारा ही पुष्ट होते रहे हैं और आज जब परिवार-व्यवस्था लड़खड़ा रही है तो ऐसे में इसकी भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जिसको ऋषियुग्म ने अपने तप-त्याग एवं दूरदर्शिता से स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए जीवंत-जाग्रत किया।

पिछली सदी में साधु-महात्मा और आध्यात्मिक महापुरुष तो कई हुए, लेकिन परिवार में रहते हुए एक सफल सद्‌गृहस्थ का आदर्श प्रस्तुत करते हुए अध्यात्म के शिखर को छूने वाले संत विरले ही हुए हैं। परमपूज्य गुरुदेव इसी की मिसाल थे।

अधिकांशतः संतों द्वारा घर-परिवार व संसार को त्यागने की बातें होती रही हैं, लेकिन परमपूज्य गुरुदेव ने परिवार में रहते हुए गृहस्थ जीवन को ही अध्यात्म की सीढ़ी बनाया। इसे तपोवन की संज्ञा देते हुए, लाखों-करोड़ों गायत्री परिजनों व जीवन उत्कर्ष के अभीप्सु साधकों को एक प्रखर दिशाबोध एवं मार्गदर्शन दिया। गृहस्थ तपोवन की अवधारणा निस्संदेह रूप में युगऋषि की एक बड़ी देन है, जिसका सम्यक मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है।

कई महात्मा एवं दार्शनिक तो ऐसे भी हुए, जो परिवार संस्था का मजाक तक उड़ाते रहे हैं, लेकिन नररत्नों की खदान के रूप में गुरुदेव द्वारा इसका प्रतिपादन वैदिक ऋषियों की उस ऋषि-परंपरा का पुनर्जागरण था, जिसके आधार पर भारत ने पूरे विश्व को देव संस्कृति के कालजयी सूत्र देकर जीवन जीने की कला का पाठ सिखाया, समाज निर्माण व राष्ट्र उत्थान का सम्यक दर्शन दिया और पूरे विश्व को एक कुटुंब मानते हुए विश्व एकता का सार्वभौम एवं सर्वकालीन युगदर्शन दिया।

वैदिक ऋषि अधिकांशतः सपत्नीक हुए। वसिष्ठ-अरुंधति, अगस्त्य-लोपामुद्रा, अत्रि-अनसूया, मनु-शतरूपा, भरद्वाज-सुशीला, जमदग्नि-रेणुका, याज्ञवल्क्य-गार्गी जैसे कितने ही ऋषि इसके आदर्श हैं।

षोडश संस्कारों की परंपरा इन्हीं की प्रयोगशाला से प्रकट हुई थी। गर्भाधान से लेकर पुंसवन, नामकरण, चूड़ाकर्म, विवाह संस्कार आदि विभिन्न संस्कार मानवीय चेतना के उत्कर्ष के सोपानों के रूप में विकसित किए गए।

व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज निर्माण एवं समाज से युग निर्माण के सूत्र वैदिक ऋषियों के सर्वांगीण दर्शन के अंग थे, जिसे परमपूज्य गुरुदेव ने समयानुकूल युगदर्शन के रूप में हम सबके सामने रखा।

इसके अंतर्गत नव वर-वधू जब दांपत्य सूत्र में बँधकर नए जीवन में प्रवेश करते हैं तो निस्संदेह

रूप में वे एकदूसरे के पूरक होकर पूर्णता के पथ पर अग्रसर होते हैं।

दोनों भिन्न पृष्ठभूमि से आते हैं, भिन्न स्वभाव व संस्कार लिए होते हैं। दोनों का आपसी तालमेल एक गहन आध्यात्मिक प्रयोग जैसा होता है, जिसमें वे विवाह संस्कार के माध्यम से गहरी समझ, अपार धैर्य एवं दूरदर्शिता के साथ गृहस्थाश्रम में पदार्पण करते हैं और ऋषिप्रणीत सूत्रों का पालन करते हुए तमाम मतभेदों के बावजूद आपसी तालमेल के आधार खोजते हैं तथा एक सुखी-सफल दांपत्य जीवन की नींव रखते हैं।

वे परस्पर अधिक आशा-अपेक्षा रखे बिना अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए एकदूसरे के उत्कर्ष का माध्यम बनते हैं। निष्काम सेवा के छोटे-छोटे प्रयोग कर्मयोगप्रधान जीवन का आधार बनते हैं, जो दोनों के चित्त को शुद्ध करते हैं।

आपसी मतभेदों का अपार धैर्य के साथ निर्वहन, तप का स्वरूप लेकर दोनों के आंतरिक विकास को सुनिश्चित करता है। संतान के आने के साथ जीवन की पूर्णता का एक नया अध्याय प्रारंभ होता है। माता-पिता के स्नेह, वात्सल्य, परस्पर प्रेम की छाँह में पलता-बढ़ता शिशु क्रमिक रूप में नररत्न के रूप में बड़ा होता है।

शनैः-शनैः गृहस्थ तपोवन में संयम, सेवा और सहिष्णुता के सोपानों को पार करते हुए दोनों परिपक्व होते हैं और संतानों में भी ये ही गुण स्वाभाविक रूप से हस्तांतरित होते जाते हैं। जिन संस्कारों को हम किसी पाठशाला, स्कूल, कॉलेज या विश्वविद्यालय में नहीं सीख सकते, वे शिशु अपने माता-पिता व अभिभावकों के सान्निध्य में सहज रूप में हृदयंगम करते हैं और फिर ये श्रेष्ठ भाव-संस्कार एवं उन्नत विचार ही जीवन की अनमोल थाती बनकर जीवनपर्यंत तमाम उतार-चढ़ाव के बीच व्यक्ति को कर्त्तव्य-पथ पर अविचल व अडिग रखते हैं।

ये सब गृहस्थ तपोवन की ही देन हैं अन्यथा मात्र भोग-वासना और स्वार्थ-पूर्ति, अहं-तुष्टि तक सीमित तथाकथित आधुनिक लिव इन रिलेशन पर आधारित परिवार तो ताश के पत्तों की भाँति कुछ समय बाद बिखरते देखे जाते हैं। भोगवाद की नींव पर खड़े पश्चिम के दांपत्य जीवन को कुछ माह या वर्षों में टूटते-बिखरते देखा जा सकता है। कुछ का अंत तो लोमहर्षक दुर्घटनाओं के साथ होता है।

जीवन की उच्चतर समझ एवं समग्र जीवन-दृष्टि के अभाव में पारिवारिक जीवन में आएदिन ऐसी दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। तलाक की बढ़ी-चढ़ी दर इसकी दुःखद कहानी बयाँ करती है। इसका प्रभाव विदेशों से अब भारतीय समाज में भी पाँव पसार रहा है, जो चिंता का विषय है।

गृहस्थ आश्रम की आँच में तपा-ढला जीवन ही देव संस्कृति के पारिवारिक आदर्शों को समझ सकता है, हृदयंगम कर सकता है अन्यथा ये बीते दिनों की किंवदंतियाँ व कथा-गाथाएँ ही प्रतीत होती हैं।

हम सब सौभाग्यशाली हैं कि हमने इस युग में ऋषियुग्म के सान्निध्य में गृहस्थ जीवन की गरिमा को देखा और समझा, जहाँ अपार स्नेह, निस्स्वार्थ प्रेम, त्याग-बलिदान और समर्पण के भाव हिलोरें लेते रहे, दशों दिशाओं में अपनी सुगंधी बिखेरते रहे।

आज भी इनकी सुवास को गायत्री तीर्थ शांतिकुंज में अनुभव किया जा सकता है। अखिल विश्व गायत्री परिवार के गायत्री परिजनों में ऋषियुग्म के इन वैदिक भाव-संस्कारों को देखा जा सकता है। इनमें संयम से लेकर सेवा एवं सहिष्णुता के भाव भरे हुए हैं, जो आसक्ति नहीं

कर्त्तव्यपालन के भाव से संपन्न हो रहे हैं; जिनमें एकदूसरे की मानवीय त्रुटियों के प्रति सहिष्णुता एवं उदारता का अपार धैर्य समाहित है।

परिवार निर्माण के इस दंगल से दीक्षित सद्गृहस्थ ही वास्तव में समाज के अखाड़े में युग निर्माण के प्रशिक्षण के लिए तैयार हो रहे हैं, जो बीज रूप में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श को समाहित किए हुए हैं। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का मंत्र पहले गृहस्थ तपोवन की प्रयोगशाला में सिद्ध होता है और फिर समाज-राष्ट्र एवं विश्व के अखाड़े में विस्तार पाता है। महाकाल युग परिवर्तन की जो पटकथा लिख रहे हैं, उसमें गृहस्थ तपोवन की आँच में तपे ऐसे सद्गृहस्थों के माध्यम से युगऋषि की चेतना का प्रसार होना सुनिश्चित है। □

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

यह सूचना गत 10 मास से निरंतर जा रही है, इसका उत्तर नहीं मिल रहा है। समझा जा सकता है कि या तो पाठकों की इसमें रुचि नहीं है अथवा अन्य कोई कारण है। अतः आगामी मास से पुराने आजीवन सदस्यों (जिनका संदेश नहीं आया है) की अखण्ड ज्योति भेजना बंद किया जा रहा है।

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो सदस्य रुपये 150 (सन् 1982) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 15 (सन् 1982) से बढ़कर रुपये 300 हो गया है—भविष्य में और बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 6000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। अखण्ड ज्योति का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20 वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/RTGS/NEFT से भेजी जा सकती है। राशि भेजने के लिए बैंकों का विवरण पत्रिका में पृष्ठ सं. 47 पर दिया गया है।

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 300/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने अखण्ड ज्योति भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पता, फोन नंबर, ई-मेल का उल्लेख अवश्य करें।

आप सबको पत्र द्वारा सूचित किया जा चुका है, संभव है किसी कारणवश पत्र न मिला हो। अपनी सहमति का पत्र डाक/ई-मेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें।

महानता

जब हमारे चिंतन में संकुचित स्वार्थ की जगह प्रेम, आत्मीयता एवं सिद्धांतनिष्ठा के गुण उमग पड़ते हैं तो न केवल चित्त का अँधेरा हटता है, बल्कि उसे परमसत्ता से तादात्म्य एवं सुसंगता की भाव स्थिति भी प्राप्त होती है।

इस अवस्था में मनुष्य का जीवन सुख-सौभाग्य एवं आत्मिक पूर्णता का अधिकारी बनता है। जिनके हृदय में स्वयं को जानने की प्यास है एवं अपने को परिष्कृत करने का स्वभाव है, जिनके भीतर परतंत्रता को त्यागकर स्वाभिमान एवं स्वानुशासन का भाव है, वही व्यक्ति अपने अंतस् की महानता एवं तदनुरूप दिशाबद्धता को प्राप्त कर पाता है एवं उसे हर अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में स्वयं के स्वभाव एवं मार्ग का उचित बोध रहता है।

महानता एक आंतरिक अवलंबन है। इसे वे ही लोग जानते हैं, जिन्हें अपनी मूलसत्ता का बोध हो गया हो, जो देवत्व की सीढ़ियों पर ऊँचा उठना जानते हों तथा अपने जीवन को परमात्मा की दिव्य धरोहर के रूप में स्वीकार कर पाते हों। जो आत्मविस्तार की भावना से जीवन के प्रयोग एवं भविष्य का निर्धारण करना जानते हों; उन्हें ही यह श्रेय प्राप्त हो पाता है कि उनके द्वारा परमात्मा की दिव्य ध्वनि मुखरित हो उठे एवं तब जीवन में जिन सिद्धांतों का समावेश होना चाहिए, वे सहज ही हो जाएँ।

जब भी कोई मनुष्य इस भीतरी तल पर ऊँचे उठने का प्रयास करता है तो उसे बाह्यजगत् की विषय-वस्तु से उतना ही संबंध रह जाता है, जितना कि स्वप्रयोजन के अनुकूल होता है तथा मनुष्य की यह वृत्ति उसे देवमानव, महामानव बनाने हेतु अनुकूल भूमिका प्रस्तुत करती है।

जिन भी मनुष्यों में यह दैवी तत्त्व पाया जाता है, वे कभी विचलित नहीं हुआ करते एवं उन्हें परमात्मरस की दिव्य अनुभूति में निरंतर रसास्वादन करने का पुण्य अवसर प्राप्त होता है। जिनका जीवन सच में किसी पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति में, मानवता को ऊँचा उठाने के ध्येय में एवं अपने द्वारा परमात्मा की दिव्य पुकार को चरितार्थ करने की दिशा में बढ़ चलता है, वे व्यक्ति धन्य हैं एवं उनका जीवन आत्मा की सत्य-अभिव्यक्ति है। जिन्हें अपनी आत्मा में छिपे प्रकाश का बोध हो जाता है, वे किसी प्रकार बाह्य बातों के वश में नहीं रहते एवं उन्हें निरंतर कुसंग से बचे रहने का पुण्य अवसर प्राप्त होता है।

यही वह दिव्य स्थल है, जिसे प्राप्त कर हममें मानवता एवं एकत्व-बोध की अनुभूति चिर-स्थायित्व को प्राप्त करती है एवं तब जीवन अंत:शोधन की प्रक्रिया में परिणत हो, एक दिव्य प्रयोगशाला तथा यथार्थ अनुक्रम बन बैठता है। अपनी क्षुद्रता को मिटाना एवं महानता का पथ प्रशस्त करना, यही मनुष्य का वास्तविक कर्त्तव्य है तथा इसे प्राप्त करने पर उसके मार्ग में अन्य कोई कठिनाई नहीं रह जाती है।

जब दिव्यता की पुकार हो तो मनुष्य के लिए क्या संभव नहीं है तथा यदि वास्तविक संतोष एवं

दीर्घकालिक आनंद की प्राप्ति की दिशा में हमें बढ़ना है, तो अपने स्वभाव का परिष्कार करना एवं गुणवत्तायुक्त चिंतन का विकास करना अनिवार्य हो जाता है।

हमारे हृदय की दिव्य भावना स्वयं अपना पथ प्रशस्त कर लेगी, बशर्ते हम उसे उचित अवसर प्रदान करें। जब मन स्वार्थकेंद्रित न होकर परमार्थ का अनुगामी एवं पूर्ण विचारशील हो जाता है, तो स्वतः ही प्रकाशपथ दिखाई देने लग जाता है एवं तब जीवन में महानता का भाव दृष्टिगोचर होने लग जाता है।

मनुष्य में देवत्व का विकास इसी विचारणा से संभव है, जिसमें कि त्याग एवं तपस्या द्वारा मनुष्य का चिंतन इतना विकसित हो जाए कि उसे निरंतर अपनी आत्मोत्कर्ष की प्रक्रिया का भान रहे एवं वह आत्मिक पथ पर अपनी निष्ठा द्वारा निरंतर ऊँचा उठता जाए। यथार्थ रूप से अपनी आत्मा का साहचर्य प्राप्त कर महानता एवं अंतरंगता का दिव्य पथ प्रशस्त होने लगता है एवं तब चित्त सदा रहने वाली शांति को प्राप्त कर, एकत्व का अधिकारी बनता है एवं आत्मसंतोष के भाव से परिपूर्ण हो उठता है।

इसे ही मानवीय चेतना का दिव्य रूपांतरण एवं आत्मिक प्रगति की दिशा में किया गया पुण्य प्रयास कहना उचित होगा, एवं तब हमारा प्रत्येक प्रयोजन उच्च दृष्टिकोण को लेकर, आत्मनिर्माण की दिशा में अग्रसर होता है।

यही चरित्र को सबल बनाने एवं आत्मा के गुणोत्थान की दिशा में बढ़ने का एकमात्र माध्यम है। महामानवों ने इसे ही अपनाया एवं वे कृतार्थ हो गए तथा आप भी इसे अपनाकर मनुष्य जीवन को धन्य बना सकते हैं। □

राबिया बसरा की गलियों में घूम रही थीं। वो कभी जोर-जोर से हँसती और कभी दहाड़े मारकर रोतीं। लोगों को देखकर हैरानी हुई, उन्होंने अनुमान लगाया कि शायद राबिया पगला गई हैं, पर राबिया प्रसिद्ध संत थीं सो सबने उनसे पूछने का यत्न किया।

राबिया बोलीं—"हँसती तो मैं उस परवरदिगार को देखकर हूँ, जो हर जगह, हर वक्त, हर चीज में मौजूद है और रोती उन बदनसीबों को देखकर हूँ, जो उसके इतने पास होकर भी उससे इतना दूर हैं।"

संत अध्यात्म के गूढ़ अर्थ ऐसी उलटबाँसियों से ही समझा दिया करते हैं।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा-25

पंचधा सूक्ष्मशरीर की साधना

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और प्राण ये 5 देवता 5 शक्तिकोशों के अधिपति हैं। इनको भी इंद्रियों की तरह ही सँभालना पड़ता है। मन की चंचलता अयोग्य भोग-विलास के लिए भटकने न पाए, वासनाओं में रमण न करने लगे, तृष्णाएँ अयोग्य मार्ग में संपदा और सुख-सामग्री एकत्रित करने के लिए मचलने न लगें—इस नियंत्रण से मन को निगृहीत किया जाता है।

बुद्धि अपने साथ पक्षपात, दूसरों के साथ अन्याय, रुचिकर का समर्थन और अरुचिकर का विरोध करने लगती है और तुरंत का लाभ देखने वाली एवं दूरवर्ती परिणामों की ओर से आँख बंद कर लेने का दोष आ जाने से बुद्धि की पवित्रता पापबद्ध हो जाती है। चित्त की प्रवृत्ति उत्कृष्टता की अभिरुचि छोड़कर निकृष्ट अभिव्यंजनाओं में भटकने लगे, तो समझना चाहिए उसकी दिव्यशक्ति का नाश हो चला।

अहंता अपने को ईश्वर का दिव्य अंश, सृष्टि की सुव्यवस्था का उत्तरदायी, आदर्शों का प्रतिष्ठापक मानने के स्थान पर शरीर और संपदा का अहंकार एवं उद्धत और उच्छृंखल आचरण करने वाली बन जाए तो समझना चाहिए उसका देवत्व भी नष्ट हुआ। प्राण का स्वरूप है सन्मार्ग पर चल सकने का साहस और कुमार्ग पर किसी भी भय या लोभ के कारण उत्पन्न होने वाले आकर्षण को ठुकरा देने की दृढ़ता।

जो जीवनोद्देश्य की पूर्ति और ईश्वर की आज्ञा पालन करने में बड़े-से-बड़ा त्याग-बलिदान प्रस्तुत कर सके, वह सच्चे अर्थों में प्राणवान है। प्राण देवता की आराधना सन्मार्गगामी शूरवीर बनकर की जाती है। गुरुदेव इन पाँचों आत्मदेवताओं को भी उसी तरह साधते रहे, जिस तरह कि इंद्रिय देवियों की पवित्रता अक्षुण्ण बनाए रहने में तत्पर रहे।

गायत्री माता के 5 मुख और 10 हाथ आलंकारिक दृष्टि से चित्रित किए जाते हैं। कितनी ही मूर्तियाँ तथा तस्वीरें इस प्रकार के चित्रण समेत मिलती हैं। यह 5 मुख अन्नमय कोश, मनोमय कोश, प्राणमय कोश, आनंदमय कोश और विज्ञानमय कोश हैं। 10 भुजाएँ उपरोक्त 5 ज्ञानेंद्रियाँ 5 देवियाँ और 5 मनस तत्त्व से संबंधित पाँच देवता हैं। इन दोनों को मिलाकर गायत्री महाशक्ति की 10 भुजाएँ बनती हैं। सामान्य जप, अनुष्ठानों के कर्मकांड पूरे करने के साथ-साथ जो पंचमुखी, दशभुजी दिव्य गायत्री को अपने प्राण, हृदय, मस्तिष्क और आचरण में घुला लेता है, वह वैसा ही लाभ प्राप्त कर सकता है, जैसा कि गुरुदेव ने उपलब्ध किया। ❑

सविता सर्व भूताना सर्व भावांश्च सूयते।
सर्वनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते॥

अर्थात समस्त तत्त्वों, सभी प्राणियों और समस्त भावनाओं को प्रेरणा देने के कारण ही उसे सविता कहते हैं।

हिमालय के प्रति संवेदनशील रवैया समय की माँग

हिमालय विश्व की सबसे युवा पर्वत शृंखला है, जो पृथ्वी के सबसे ऊँचे हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों को स्वयं में समेटे हुए है। 2500 किलोमीटर लंबे भू-क्षेत्र में विस्तार लिए हुए हिमालय में भारत के 12 प्रांत आते हैं।

विविधतापूर्ण वृक्ष-वनस्पतियों एवं जीवधारियों को स्वयं में धारण किए अपनी एक विशिष्ट सांस्कृतिक एवं धार्मिक परंपरा को समाहित किए हुए हिमालय विश्व का एक अद्भुत क्षेत्र है, जिसके केंद्र में है इसकी कालजयी आध्यात्मिक चेतना, जो इसे विश्व के अन्य हिमाच्छादित क्षेत्रों एवं पर्वतशिखरों के मध्य विशिष्ट एवं अद्वितीय स्थान देती है।

आश्चर्य नहीं कि विश्व भर से पर्यटक, पर्वतारोही, रोमांचप्रेमी, प्रकृति उपासक, आध्यात्मिक जिज्ञासु, खोजी साधक, अन्वेषक, भूगोलशास्त्री एवं वैज्ञानिक हिमालय की ओर खिंचे चले आते हैं और अपना-अपना विशिष्ट उद्देश्य इसके आँचल में पूरा करते हैं। हिमालय किन-किन विशेषताओं को स्वयं में समेटे हुए है, इसका विहंगावलोकन रोचक भी है और रोमांचक भी।

इसकी विशेषताओं के साथ इस अद्भुत क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं व चुनौतियों का बोध भी आवश्यक है, जिससे इसके संरक्षण की दिशा में उपयुक्त प्रयास किए जा सकें। हिमालय इस पृथ्वी की सबसे युवा पर्वत-शृंखला है, जो टेक्टोनिक घर्षण व टकराहट के चलते सतत ऊपर उठ रही है। आश्चर्य नहीं कि इसकी युवा भौगोलीय प्रकृति के कारण यह भूकंपीय सक्रियता की चुनौतियों से भरा क्षेत्र है।

पिछली एक शताब्दी में यह क्षेत्र काँगड़ा से लेकर चमोली तथा काठमांडू क्षेत्र के ध्वंसकारी भूकंपों का साक्षी रहा है, जिसको देखते हुए इस क्षेत्र में भूकंपरोधी मकानों से लेकर समावेशी विकास पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। विश्व की सबसे ऊँची चोटियाँ इसमें मौजूद हैं, जिनमें माउंट एवरेस्ट, के, कंचनजंगा से लेकर धौलागिरी, अन्नपूर्णा, नंदादेवी जैसे हिमशिखर प्रख्यात हैं।

इसके अतिरिक्त हर हिमालयी प्रांत में तमाम हिमशिखर मौजूद हैं, जो विश्वभर के पर्वतारोहियों एवं रोमांचप्रेमियों के बीच खासे लोकप्रिय हैं। उच्च हिमालय में ट्रेकिंग, पर्वतारोहण एवं अन्य एडवेंचर गतिविधियों में भाग लेने वाले लोगों के लिए ये क्षेत्र स्वर्ग से कम नहीं हैं।

हालाँकि हिमालय के उत्तुंग शिखर, इनकी अत्यधिक ऊँचाई, विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ, बरफीले तूफान, यातायात की चुनौतियाँ भारी शारीरिक एवं मानसिक जीवट तथा संसाधनों की माँग करती हैं और मृत्यु का जोखिम भी यहाँ कम नहीं रहता।

इन तमाम चुनौतियों एवं खतरों के बावजूद विश्वभर से पर्वतारोहियों व प्रकृतिप्रेमी इसके आकर्षण में बँधकर यहाँ पधारते हैं तथा पृथ्वी के सबसे सुंदर-आकर्षक-लोमहर्षक एवं विरल वातावरण में अपने जीवट, कौशल व इच्छाशक्ति का परीक्षण करते हुए अपनी मनमाँगी मुराद को

पूरा होने के अनुभव के साथ यहाँ से विदाई लेते हैं। विविधतापूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र भी हिमालय-क्षेत्र को विशेष बनाता है।

यहाँ उपोष्णकटिबंधीय, शीतोष्ण व अल्पाइन जंगल तथा बुग्याल के साथ अल्पाइन रेगिस्तान एवं टुंड्रा, हर तरह के वन एवं भू-क्षेत्र विद्यमान हैं, जिनसे आच्छादित हरी-भरी वादियाँ इसके सौंदर्य में चार-चाँद लगाती हैं।

इसके साथ ग्लेशियर, क्षेत्र, नदियाँ एवं झीलें इसके सौंदर्य को और समृद्ध करते हैं। निस्संदेह रूप में हिमालय स्वयं में अतुलनीय जैव-विविधता को समेटे हुए है।

इसकी विरल ऊँचाई भरे वातावरण में जहाँ विशिष्ट फ्लोरा-फोना पनपता है, विभिन्न पक्षियों, स्तनपायी जीवों, जलचर-झलचर-उभयीचर कीट-पतंगों एवं पौध-विविधता को पनपते देखा जा सकता है। इसी के साथ हिमालय विश्व के 36 जैव-विविधता हॉटस्पॉट में से एक है, जहाँ कई प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर हैं, जिनके संरक्षण की आवश्यकता है।

उच्च हिमालय-क्षेत्र से जुड़ी अन्य चुनौतियाँ हैं—सीमित फसली समय, ऑक्सीजन की कमी, खाइयाँ-ढलान व जलस्रोत की सीमित पहुँच तथा मृदा की गुणवत्ता। इसके कारण यहाँ के ढलानदार सीढ़ीनुमा खेतों में फल-सब्जी उत्पादन के साथ पशुपालन व कृषि की अपनी सीमा है, जिस पर मौसम परिवर्तन की मार चिंताजनक प्रभाव डाल रही है।

पिछले वर्ष बरसात में बाढ़ के विप्लवी मंजर का यह भू-क्षेत्र साक्षी रहा है और बढ़ती गरमी के साथ सूखते जलस्रोत और पिघलते ग्लेशियर गंभीर चुनौती के रूप में सामने आ रहे हैं, जिनका प्रकोप पिछले कुछ वर्षों में बढ़ा है। इन विकट परिस्थितियों के बीच भी यहाँ के लोगों का जुझारूपन काबिले तारीफ है, लेकिन इस संवेदनशील क्षेत्र के प्राकृतिक संरक्षण की महती आवश्यकता है।

हिमालय अपने ग्लेशियरों के लिए भी प्रख्यात है। यहाँ के विशाल ग्लेशियर ताजा जल के अकूत स्रोत हैं, जो साथ ही बिजली उत्पादन से लेकर कृषि में सहायक बनते हैं। हालाँकि इन ग्लेशियरों पर बनी झीलें, मौसम परिवर्तन का असर, जल-विवाद, जैव-विविधता का संकट, बढ़ता पर्यटन आदि इसके लिए खतरे की घंटी बनते जा रहे हैं, जिस पर व्यवस्थित शोध-अनुसंधान के साथ संरक्षण के कठोर कदमों की आवश्यकता है। साथ ही इस क्षेत्र में समावेशी विकास पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

बरफ से ढकी हिमालय की चोटियाँ तथा इसके ग्लेशियरों के कारण हिमालय एशिया की प्रमुख नदियों का उद्‌गम स्थल भी है। गंगा, यमुना, सिंधु, ब्रह्मपुत्र से लेकर सतलज, व्यास, रावी, चिनाब जैसी सदाबहार नदियाँ इससे निस्सृत होती हैं।

नदियों का यह विशाल समूह भारत के विशाल क्षेत्र को सिंचित करता है, करोड़ों लोगों का भरण-पोषण करता है और सुंदर एवं उपजाऊ घाटियों का निर्माण करता है।

हिमालय का अपना सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्त्व है। एक ओर जहाँ यह विभिन्न ऋषियों की तपःस्थली रहा है तो वहीं विभिन्न धर्मों के तीर्थस्थल भी यहाँ विराजमान हैं।

हिंदू, बौद्ध, जैन अनुयायियों के लिए यहाँ का कैलास मानसरोवर एक प्रमुख तीर्थ है। इसके साथ चारधाम यात्रा, अमरनाथ यात्रा, मणिमहेश यात्रा, हेमकुंड साहिब, वैष्णोधाम जैसी तीर्थयात्राएँ यहाँ आस्था के गहन-गंभीर प्रयोगों के साथ आध्यात्मिक अनुभव का आधार बनते हैं।

इन तीर्थस्थलों के साथ यहाँ के सात्त्विक परिवेश में आध्यात्मिक विश्रामस्थल शांति की खोज में विचरण कर रहे पर्यटकों के लिए विशिष्ट अनुभव बनते हैं। इसके साथ यहाँ के पर्व-त्योहार, मेले, कला एवं वास्तुशिल्प आदि यहाँ की विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस तरह हिमालय अपने भौतिक अस्तित्व से परे आध्यात्मिक जागरण, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति एवं तीर्थ चेतना का संवाहक है, जो मनुष्य और प्रकृति के बीच एक सघन संबंध जोड़ता है। इस रूप में हिमालय एक चिर प्रेरक दिव्यता, श्रद्धा-आस्था एवं समर्पण का प्रतीक है, जिसका भावभरा अवगाहन मानवीय अंत:करण में दिव्यभावों को झंकृत करता है। इन विशेषताओं के चलते इस क्षेत्र को पर्यटन एवं तीर्थाटन-क्षेत्र के रूप में विकसित करने के प्रयास जारी हैं।

हिमालय के आँचल में विविध ट्रेकिंग ट्रेल्ज, यूनेस्को साइट्स, वन्य जीव-अभ्यारण्य, स्कीइंग एवं एडवेंचर खेल-केंद्र, चाय बागान, बोटेनिक्ल गार्डन एवं प्राकृतिक रिजर्व आदि पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र रहते हैं। यहाँ भारी संख्या में यात्री आते हैं, जो कैंपिंग से लेकर ट्रेकिंग, फोटोग्राफी का भरपूर आनंद लेते हैं। इन सबके साथ हिमालय का सतत परिवर्तनशील भूगोल एक गहन शोध अध्ययन का विषय है।

इस युवा पर्वत-क्षेत्र में टेक्टोनिक गतिविधियाँ, वनकटाव, भू-अपरदन, ग्लेशियरों का तीव्र गति से सिकुड़ना, बरफीले तूफान, ग्लेशियर झीलों का फटना तथा सांस्कृतिक प्रभाव विचारणीय हैं।

हिमालय में लाखों वर्षों का विकास, इसकी गोद में इनसान का विचरण, मानवीय हस्तक्षेप एवं अमानवीय गतिविधियों के इस पर गंभीर प्रभाव— भूगर्भ, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी विज्ञानियों के लिए शोध अध्ययन का विषय हैं।

हिमालय अपनी दिव्य एवं भव्य उपस्थिति के साथ प्रकृतिप्रेमी, रोमांच-उत्साहियों, अध्यात्म खोजियों एवं सांस्कृतिक अन्वेषकों के लिए आकर्षण का केंद्र है और हिमालय उन्हें कभी निराश भी नहीं करता। आवश्यकता इससे जुड़ी चुनौतियों को अनुभव करने व इसके साथ संतुलन बिठाने की है। आवश्यकता इसके प्राकृतिक संरक्षण में अपने भावभरे योगदान की है, क्योंकि हिमालय की संवेदनशील प्रकृति की अपनी सीमाएँ हैं, इससे ज्यादती भारी पड़ सकती है। ❑

अजमेर में स्वामी दयानंद जी का निर्वाण अर्द्धशताब्दी समारोह मनाया जा रहा था, जिसमें संत हंसराज सहित देश भर के अनेकानेक संन्यासी तथा विद्वान उपस्थित थे। कुछ संन्यासी स्वामी सर्वदानंद जी से मिलने पहुँचे और उनसे कहने लगे—''स्वामी जी! हमारी इच्छा है कि आज हंसराज जी भी संन्यास ग्रहण करें। आपका निर्देश वे टाल नहीं पाएँगे। उनके संन्यास ग्रहण करने से हमारा मान बढ़ेगा।''

स्वामी सर्वदानंद जी बोले—''जिन हंसराज जी ने अपना संपूर्ण जीवन आर्य चिंतन के प्रचार-प्रसार और गरीब विद्यार्थियों के लिए नि:शुल्क विद्यालयों की स्थापना करने में समर्पित कर दिया, क्या आप उन्हें केवल गेरूआ वस्त्र नहीं पहनने के कारण संन्यासी नहीं मानते। संन्यास आवरण का नहीं, आचरण का विषय है।'' संन्यास की सच्ची व्याख्या सुनकर आगंतुक संन्यासियों को गलती का बोध हुआ।

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार–186

पूज्य गुरुदेव की दृष्टि में समग्र स्वास्थ्य

प्रत्येक मनुष्य के लिए समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा को जानना और इसके स्वरूप को आत्मसात् करना आवश्यक है। यह जरूरी नहीं कि जब किसी बीमारी के शिकार हो जाएँ तब ही स्वास्थ्य संबंधी बातों के लिए सजग बना जाए। अच्छा यही है कि प्रारंभ से ही स्वास्थ्य संबंधी महत्त्वपूर्ण पक्षों के प्रति जागरूक रहा जाए, ताकि एक समग्र, संपूर्ण और स्वस्थ जीवन का निर्माण संभव हो सके।

जीवन में शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक, चारित्रिक, नैतिक, सामाजिक आदि कई आयाम हैं और इन सभी से मिलकर मनुष्य जीवन परिभाषित होता है। इन आयामों में किसी भी स्तर पर यदि कोई कमी–कमजोरी या अधूरापन है तो इसे एक रोग ही कहा जाएगा। एक स्वस्थ और संपूर्ण जीवन के लिए इन सभी आयामों का सुविकसित, संतुलित और स्वस्थ होना आवश्यक है।

समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा का संबंध जीवन की इसी संपूर्णता से है। इसमें मानव जीवन एवं व्यक्तित्व के सभी आयाम सन्निहित हैं। समग्र स्वास्थ्य को लेकर विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है।

आधुनिक समय में बदलती जीवनशैली और स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने इस शोधकार्य में पूज्य गुरुदेव के विचारों को आधार बनाकर समग्र स्वास्थ्य के विषय में महत्त्वपूर्ण तथ्यों और जानकारियों को प्रस्तुत किया है।

यह शोध अध्ययन विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन विभाग (दर्शनशास्त्र विषय) में शोधार्थी जोगीराज यादव द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० कृष्णा झरे के निर्देशन में वर्ष 2022 में संपन्न किया गया है।

इस शोध अध्ययन का शीर्षक है— **'पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के दार्शनिक चिंतन में समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा–एक विवेचनात्मक अध्ययन।'** सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधृत इस शोध अध्ययन को कुल 6 अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय है—**विषय प्रवर्तन**। इसके अंतर्गत अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्ता, समग्र स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा, समग्र स्वास्थ्य का महत्त्व, समग्र स्वास्थ्य के विविध आयाम एवं विभिन्न दृष्टिकोणों की विवेचना की गई है। इसके साथ ही वर्तमान में समग्र स्वास्थ्य के समक्ष चुनौतियाँ और इसके समाधान के संदर्भ में पूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीराम शर्मा जी के चिंतन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है। मनुष्य जीवन के समुचित विकास, सफलता एवं उपलब्धियों के लिए सभी स्तरों पर स्वस्थ जीवन का होना आवश्यक है।

समग्र स्वास्थ्य से सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त होता है और पूर्ण जीवन की उपलब्धि भी होती है। समग्र स्वास्थ्य के संबंध में शास्त्रों एवं विद्वानों द्वारा अनेक तरह के विचार प्रस्तुत किए गए। इन विचारों में सबसे महत्त्वपूर्ण अवधारणा

यह है कि भारतीय दृष्टि से 'स्वस्थ' उसे कहा गया है जो 'स्व' में स्थित है।

इसमें देह, इंद्रिय, प्राण, मन, आत्मा—सब कुछ 'स्व' में सम्मिलित हैं अर्थात मनोशारीरिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से जो अपने भीतर सुखस्वरूप आत्मतत्त्व में स्थित रहे, वही स्वस्थ कहलाता है। स्वस्थता की यह अवधारणा मानवीय जीवन की पूर्णता, समग्रता और अक्षुण्णता की परिचायक है और समग्र रूप से स्वस्थ होना ही इसका लक्ष्य है।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार समग्र रूप से स्वस्थ वह व्यक्ति है, जो मानवीय सत्ता के परिप्रेक्ष्य में स्वयं के आंतरिक चिंतन, बाह्य चरित्र और व्यवहार—तीनों में समन्वित हो। मानवीय सत्ता के तीन पक्ष हैं—स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर एवं कारण शरीर। इन तीनों का समुचित समन्वय बनाना ही समग्र स्वास्थ्य है। आरोग्य, परिष्कृत चिंतन और भाव-संवेदनाओं की पवित्रता—तीनों मिलकर ही 'स्व' के अर्थ को सार्थकता देते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में युक्तिसंगत आहार-विहार, कर्म-चिंतन-व्यवहार के चिंतन में समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा प्रस्तुत हुई है। आयुर्वेद के शास्त्रों में स्वस्थ व्यक्ति उसे ही कहा गया है, जिसके दोष, धातु, मल सम हों तथा जिसकी इंद्रियाँ, मन, आत्मा प्रसन्न हों। योग में भी अंतः-बाह्य शुद्धि, परिष्कार और प्रखर-कुशलता को समग्र स्वास्थ्य का पर्याय कहा गया है। पूज्यवर ने भी समग्र स्वास्थ्य के अंतर्गत जीवन के लौकिक व आध्यात्मिक—दोनों पहलुओं को समान महत्त्व दिया है।

इस अध्ययन में समग्र स्वास्थ्य के प्रमुख 5 आयामों की विवेचना है—

(1) शारीरिक स्वास्थ्य,

(2) मानसिक स्वास्थ्य,

(3) बौद्धिक स्वास्थ्य,

(4) सामाजिक स्वास्थ्य और

(5) आध्यात्मिक स्वास्थ्य।

इन पाँचों आयामों पर भिन्न-भिन्न तरह की स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ भी हैं; जैसे—शरीर, मन के रोग, चिंतन-चरित्र की विकृति, सामाजिक बुराइयाँ, भ्रष्टाचार, आतंक, हिंसा, भोगवादी मानसिकता, स्वार्थ-अहं आदि सभी कुछ समग्र स्वास्थ्य की चुनौतियाँ हैं।

इन चुनौतियों का सार्थक समाधान आचार्य जी के युग निर्माण सत्संकल्परूपी 18 सूत्रों में विद्यमान है, जिनका शोधार्थी ने विस्तृत विवेचन किया है।

शोध का द्वितीय अध्याय है—**'पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के जीवन दर्शन एवं समग्र स्वास्थ्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि।'** इसमें पूज्य गुरुदेव का जीवन परिचय, उनके साहित्य में स्वास्थ्य दर्शन की पृष्ठभूमि, प्रमुख केंद्रों की स्थापनाओं का विवेचन करते हुए समग्र स्वास्थ्य विज्ञान के रूप में संस्कार, परंपरा, समग्र स्वास्थ्य का सामाजिक आदर्श तथा सप्त आंदोलन के रूप में समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति के आधारभूत पक्षों तथा प्रायोगिक प्रक्रियाओं को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है।

पूज्य गुरुदेव का जीवन (1911–1990) एक महान आध्यात्मिक महापुरुष और मानवता के समग्र स्वास्थ्य चिकित्सक का पर्याय है। मनुष्य जीवन के लौकिक और आध्यात्मिक स्तर के सभी रोगों का समुचित समाधान उनके चिंतन में विद्यमान है।

उनके चिंतन की व्यावहारिक प्रक्रियाओं को उन्हीं के द्वारा स्थापित प्रमुख संस्थानों; यथा—शांतिकुंज हरिद्वार, तपोभूमि मथुरा, ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा और देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार तथा देश-विदेश

में फैले हजारों गायत्री शक्तिपीठ संस्थानों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है और वहाँ पहुँचकर उनका लाभ भी उठाया जा सकता है।

युग निर्माण मिशन के प्रणेता पूज्य गुरुदेव ने ऋषि परंपराओं की युगानुरूप वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक व्याख्या करते हुए अध्यात्म विज्ञान को अपने चिंतन का मुख्य आधार बनाया और व्यक्ति तथा समाज निर्माण हेतु संस्कार परंपराओं की पुनर्प्रतिष्ठा एवं सुधारात्मक व रचनात्मक अभियानों का सूत्रपात किया है। इन सभी पहलुओं को विस्तृत रूप से इस अध्याय में विवेचित किया गया है।

अध्ययन का तृतीय अध्याय है—**'दार्शनिक चिंतन में समग्र स्वास्थ्य के विविध आयाम।'** इसमें स्वास्थ्य की परिभाषा, समग्र स्वास्थ्य के आयाम एवं बाधक रोग तथा समग्र स्वास्थ्य को उपलब्ध कराने वाली विभिन्न भारतीय उपचार पद्धतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

शरीर, मन और अंतस्थ चेतना की ओजस्वी अवस्था जिसमें समग्र रूप से शारीरिक बीमारी और दरद के अभाव की स्थिति हो, उसे स्वास्थ्य कहते हैं। पूर्ण स्वास्थ्य की पहचान यही है कि शारीरिक, मानसिक कार्य समय से पूर्ण क्षमता से संपादित हो तथा जीवन में सहजता और प्रसन्नता की स्थिति बनी रहे।

समग्र स्वास्थ्य के प्रमुख पाँचों आयामों की एक–दूसरे से घनिष्ठ संबद्धता है। जीवन के स्वरूप में शरीर, मन, भाव और आत्मा के तल पर चिकित्सा विज्ञान में विभिन्न रोगों और उनके समाधान की चर्चा की गई है। जीवन के हरेक तल पर आरोग्य की महत्ता भी समझाई गई है। संपूर्ण जीवन में आरोग्य की प्राप्ति कराना ही समग्र स्वास्थ्य के चिंतन की मूल धुरी है।

इसी अवधारणा को भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में अलग–अलग ढंग से प्रस्तुत किया है, जिनकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता प्राचीनकाल से आज तक यथावत् मौजूद है। इस अध्याय में समग्र स्वास्थ्य को प्राप्त कराने वाली जिन प्रणालियों की विस्तृत विवेचना की गई है; वे हैं—

(1) आयुर्वेद चिकित्सा,
(2) योग चिकित्सा,
(3) प्राण चिकित्सा,
(4) सूर्य चिकित्सा,
(5) मंत्र चिकित्सा,
(6) उपवास चिकित्सा,
(7) संगीत चिकित्सा और
(8) यज्ञ चिकित्सा।

चतुर्थ अध्याय—**'भारतीय दर्शन में समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा'** है। इसके अंतर्गत वेद, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, षड्दर्शन, नास्तिक दर्शन, आयुर्वेद दर्शन एवं रामचरितमानस में समग्र स्वास्थ्य की अवधारणाओं का विवेचन किया गया है।

वेदों में मनुष्य जीवन के लिए शतायु, स्वस्थ और स्वावलंबी जीवन की कामना की गई है तथा वेदों में इंद्रियों और पंच प्राणों के स्वस्थ और बलयुक्त रहने का संदेश है। तप और व्रत से समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति का मार्ग दिखाया गया है। उपनिषदों में अविद्या–अज्ञान रूपी महाव्याधि से मुक्ति पाने हेतु मोक्ष मार्ग का उपदेश है। मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ने में ही समग्र स्वास्थ्य की सिद्धि है और इसके लक्षण हैं—सत्, चित्, आनंद की जीवन में प्रतिष्ठा। गीता में भी कर्म–पुरुषार्थ द्वारा समस्त दुःखों को दूर करने के उपाय और समग्र स्वास्थ्य की सिद्धि का मार्ग प्रस्तुत है।

षड्दर्शनों में भी दुःख–बंधनों से निवृत्ति और मोक्षप्राप्ति के उपायों के रूप में आध्यात्मिकता से पुष्ट समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा मौजूद है। आयुर्वेद दर्शन तो पूर्णरूपेण समग्र स्वास्थ्य के चिंतन, सिद्धांत

और उपायों की विवेचना से ओत-प्रोत है। वात, पित्त, कफ को स्वास्थ्य का मुख्य स्तंभ और आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य आदि को उपस्तंभ बताते हुए आयुर्वेद में स्वस्थ एवं पूर्ण जीवन का मर्म समाहित है।

रामचरितमानस में भी समग्र स्वास्थ्य की उपलब्धि का मार्ग शुद्ध आहार-विहार, धर्म, पुरुषार्थ, तप, साधना, संयम आदि उपायों के रूप में प्रस्तुत हुआ है। उक्त सभी भारतीय चिंतन स्रोतों में समग्र स्वास्थ्य के मर्म का इस अध्याय में तथ्यात्मक रूप से विस्तृत विवेचन किया गया है।

शोध अध्ययन का पंचम सोपान है— **'पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के साहित्य में समग्र स्वास्थ्य का विवेचन।'** इसके अंतर्गत युग निर्माण साहित्य में स्वास्थ्य संबंधी विचार, युग निर्माण योजना का उद्देश्य—स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज; नैतिक-बौद्धिक-सामाजिक क्रांति के रूप में सामाजिक स्वास्थ्य के 3 आधार; संपूर्ण स्वास्थ्य के उपाय—साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा, उपासना, साधना और आराधना; समग्र स्वास्थ्य के तीन महत्त्वपूर्ण पक्ष—चिंतन, चरित्र और व्यवहार तथा व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व निर्माण की प्रक्रिया में समग्र स्वास्थ्य का आदर्श प्रस्तुत है।

पूज्य गुरुदेव के युग निर्माणी साहित्य में युग की समस्त समस्याओं का समाधान और विश्व मानवता के लिए नवनिर्माण के सृजनकारी तत्त्व मौजूद हैं। व्यावहारिक स्तर पर शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक क्षमताओं को वे स्वस्थ जीवन का अनिवार्य पहलू मानते हैं।

मनुष्य जीवन में सभी स्तरों पर स्वास्थ्य प्राप्ति के उपायों को आचार्य जी के चिंतन में विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है; जैसे—जीवन-साधना, तप, स्वाध्याय, योग, उपासना, संयम आदि। समग्र स्वास्थ्य की इन विशिष्ट विधियों और इनकी प्रक्रियाओं का विस्तृत विवेचन इस अध्याय को अत्यंत महत्त्वपूर्ण बना देता है।

अध्ययन का अंतिम सोपान **'उपसंहार'** है। इसके अंतर्गत सभी अध्यायों का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष रूप में शोध विषय के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को उजागर किया गया है। वर्तमान समय में इस शोध की महत्ता, उपादेयता एवं समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा को समझने तथा आत्मसात् करने में अत्यंत सहायक परमपूज्य गुरुदेव के व्यापक चिंतन का महत्त्व प्रस्तुत किया गया है।

शोधार्थी के अनुसार पूज्य गुरुदेव का समग्र स्वास्थ्य दर्शन, वर्तमान की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप समस्त समस्याओं का समाधान देने में सक्षम है। समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा में पूज्य गुरुदेव का अध्यात्मवादी दृष्टिकोण सन्निहित है और इसके सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आयामों में ऋषि चिंतन की युगानुरूप अभिव्यक्ति है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

युगगीता — 293

बाह्य त्याग तामसिक होता है

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की सातवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के छठे श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान, अर्जुन से कहते हैं कि 'हे पार्थ! इन यज्ञ, दान और तपरूपी कर्मों को तथा दूसरे अन्य कर्मों को आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिए—यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।' भगवान इस सूत्र में कहते हैं कि 'चाहे हम सात्त्विक कर्मों को करें या अन्य किन्हीं भी कर्मों को—उनको करने का भाव निरासक्ति ही होना चाहिए, तभी वे हमें बंधनमुक्त कराने का आधार बनते हैं।' यहाँ भगवान कृष्ण कर्मों के फल के प्रति भी त्याग का भाव रखने का संदेश देते हैं और उनको करने के प्रति भी निरासक्ति के भाव को अपनाने को कहते हैं। वे कहते हैं कि हमें आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग—दोनों को ही अपनाने की आवश्यकता है। साधक की आसक्ति न तो कर्म में रहे और न उसके फलों में रहे—ऐसा करने पर साधक स्वतः ही पवित्र हो जाता है।

ऐसा इसलिए; क्योंकि फलों की इच्छा तो कई बार छूट भी जाती है, परंतु कर्मों के साथ संगता का भाव कठिनाई से जाता है। फलों की इच्छा का आधार लोभ व मोह हैं तो वहीं कर्म के साथ संगता का भाव अहंकार व अविद्या से आता है। जैसे ही चेतना का जड़ के साथ संबंध टूटता है, वैसे ही ये दोनों भाव भी विदा हो जाते हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ 7 ॥

शब्द विग्रह—नियतस्य, तु, सन्न्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते, मोहात्, तस्य, परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः।

शब्दार्थ—परंतु (**तु**), नियत (**नियतस्य**), कर्म का (**कर्मणः**), स्वरूप से त्याग (**सन्न्यासः**), उचित नहीं है। (इसलिए) (**न, उपपद्यते**), मोह के कारण (**मोहात्**), उसका (**तस्य**), त्याग कर देना (**परित्यागः**), तामस (**तामसः**), त्याग कहा गया है (**परिकीर्तितः**)।

अर्थात नियत कर्म का तो त्याग करना उचित नहीं है। उसका मोहपूर्वक त्याग करना तामसिक कहा गया है। जितने भी शास्त्रोक्त विहित कर्म हैं, वे नियत कर्म कहलाते हैं; क्योंकि वो हमारे कर्त्तव्य-कर्म कहलाते हैं। उनको त्याग देने पर उनका दुष्परिणाम अनेकों को भुगतना पड़ता है।

जैसे भगवान सूर्य द्वारा ताप व प्रकाश प्रदान करना उनका नियत कर्म है—उसके अभाव में सृष्टि का समस्त कार्य-व्यापार रुक जाएगा। ग्रह-नक्षत्रों का उनकी कक्षा में परिभ्रमण, नदी का बहना, वायु का प्रवाह इत्यादि सभी उनके निर्धारित कर्त्तव्य-कर्मों में आते हैं। इनको त्यागना साधक के पतन का कारण बनता है।

इस श्लोक से प्रारंभ कर आगे के अन्य दो श्लोकों में भगवान 3 तरह के त्यागों का वर्णन करते हैं और उसका प्रारंभ तामसिक त्याग के विवरण से करते हैं। वे कहते हैं कि तामसिक त्याग हर दृष्टि से त्याज्य ही है और वैसा करना संसार से मुक्ति नहीं दिलाता, वरन बंधन का ही कारण बनता है। इसीलिए भगवान इस श्लोक में कहते हैं कि **'नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते'**—अर्थात इससे पूर्व के श्लोक में भगवान ने त्याग के विषय में जो अपना अभिमत बताया है, उससे यह तामसिक त्याग बिलकुल विपरीत है, इसीलिए भगवान 'तु' अर्थात 'वह तो' शब्द का प्रयोग करते हैं, ताकि वह भेद स्पष्ट हो सके।

भगवान आगे कहते हैं कि **'मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः'**—अर्थात ऐसे नियत कर्मों को मूढ़ता से अर्थात बिना विवेक-विचार के छोड़ देना तामस त्याग कहा जाता है। एक तरह से भगवान बाहर एवं भीतर के त्याग का अंतर भी यहाँ स्पष्ट कर दे रहे हैं।

कई लोग कर्मों को छोड़ देने को ही त्याग मान कर बैठ जाते हैं; क्योंकि ये प्रत्यक्ष त्याग दिखाई पड़ते हैं; परंतु भगवान आंतरिक त्याग को, वासना-आसक्ति के त्याग को ही सच्चा त्याग मानते हैं, क्योंकि ये ही हमारे जन्म-मृत्यु-कर्मबंधन का कारण हैं।

यदि बाह्य त्याग को वास्तविक त्याग समझ लिया जाए तो मृत्यु के साथ ही सबकी मुक्ति हो जाती है, परंतु ऐसा होता कहाँ है? वह आंतरिक बंधन जब खुलता है, तभी मुक्ति हो पाती है। वही सच्चा त्याग है।

इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है—

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तब ते जीव भयउ संसारी।
छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥

अर्थात जड़-चेतन की गाँठ पड़ गई है। वह गाँठ मिथ्या है, पर उसे सुलझाना कठिन-सा हो गया है। जब से गाँठ पड़ गई, तब से यह जीव संसारी बन गया है। वह गाँठ छूटती नहीं और यह जीव सुखी होता नहीं। श्रुति और पुराणों में इसके अनेक उपाय कहे गए हैं, मगर यह गाँठ छूटने के बजाय अधिक-से-अधिक पक्की हो जाती है। इसीलिए भगवान आंतरिक त्याग को मूल बताते हुए बाह्य त्याग को तामसिक ठहराते हैं।

(क्रमशः)

साधारण समय और विशेष समय में, साधारण व्यक्ति और विशेष व्यक्ति में एक विशिष्ट अंतर होता है। साधारण की चाल धीमी होती है और विशिष्ट को तत्काल निर्णय करने से लेकर कदम उठाने तक की प्रक्रिया संपन्न करनी ही होती है।

—परमपूज्य गुरुदेव

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संवाहक बना देव संस्कृति विश्वविद्यालय

पूज्य गुरुदेव की नवयुग की संकल्पना जिसमें पूज्यवर ने समस्त विश्व में एक धर्म—मानव धर्म की न केवल बात कही, वरन उसके क्रियान्वयन की सुनियोजित योजना भी बनाई—उसके अंतर्गत देव संस्कृति विश्वविद्यालय ऐतिहासिक कदम उठा रहा है। इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विगत दिनों सिख समाज एवं सनातन संस्कृति का विशिष्ट समागम हुआ।

कार्यक्रम का शुभारंभ उत्तराखंड के माननीय राज्यपाल ले.ज.(से.नि.) श्री गुरमीत सिंह जी, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं श्री फकीर सिंह खालसा के आठवें वंशज निहंग समाज के प्रतिनिधि बाबा हरजीत सिंह रसूलपुर जी ने किया।

कार्यक्रम में अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में माननीय राज्यपाल महोदय ने कहा कि गायत्री परिवार व निहंग समाज का यह मिलन एक आध्यात्मिक संगम है। यह नई पीढ़ी में साहस, शौर्य और पराक्रम जगाने का समागम है। उन्होंने आगे यह भी कहा कि यह समागम देश-राष्ट्र के लिए एक मिसाल बनेगा और इसके माध्यम से राष्ट्रनिर्माण की एक नई धारा बहेगी।

प्रतिकुलपति जी ने कार्यक्रम की रूपरेखा को स्पष्ट करते हुए कहा कि भारत को अक्षुण्ण बनाए रखने में सिख संप्रदाय का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सिख और सनातन का मिलन साहस, शौर्य, पराक्रम और पवित्रता, प्रखरता, संवेदना का मिलन है।

निहंग समाज प्रतिनिधि बाबा हरजीत सिंह रसूलपुर जी ने अपने वक्तव्य में कहा कि आज जो संबंध स्थापित हुए हैं, ये सभी के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। सिख और सनातन का संबंध अटूट है, जो आपसी भाईचारा का प्रतीक है। उन्होंने आगे कहा कि गायत्री परिवार की सहजता, पवित्रता और अनुशासन नए युग के आगमन का शुभ संकेत है।

ज्ञात हो कि निहंग समाज प्रतिनिधियों ने शांतिकुंज में ही प्रातःकाल प्रतिकुलपति जी सहित वैदिक परंपरा से 5 कुंडीय यज्ञ किया एवं अखिल विश्व गायत्री परिवार प्रमुख श्रद्धेया शैल जीजी का आशीर्वाद भी प्राप्त किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में आयोजित कार्यक्रम समापन से पूर्व माननीय राज्यपाल महोदय ने कुमाउंनी प्रज्ञागीतों, ई न्यूज लेटर रिनांसा, धन्वंतरि पत्रिका, संस्कृति संचार आदि का विमोचन किया। प्रतिकुलपति जी ने माननीय राज्यपाल एवं मंचासीन अतिथियों को स्मृतिचिह्न आदि भेंट देकर सम्मानित किया। इस अवसर पर अयोध्या राममंदिर लंगर वाले के प्रमुख जत्थेदार और निहंग समाज के प्रतिनिधियों, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सदस्य और विभिन्न राज्यों से आए गायत्रीसाधक उपस्थित रहे।

विगत दिनों भारत के माननीय निर्वाचन आयुक्त श्री ज्ञानेश कुमार जी भी सपरिवार गायत्री तीर्थ शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचे। माननीय निर्वाचन आयुक्त ने सपत्नीक देव

संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रज्ञेश्वर महादेव मंदिर में जलाभिषेक किया।

इसके पश्चात प्रतिकुलपति जी ने मृत्युंजय सभागार, बाल्टिक संस्कृति अध्ययन केंद्र एवं स्वावलंबन केंद्र सहित विश्वविद्यालय के विभिन्न प्रकल्पों की गतिविधियों से उन्हें अवगत कराया। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने उन्हें बताया कि समाज एवं राष्ट्र के लिए जीने की आकांक्षा रखने वाले सुशिक्षित, सुशील, स्वावलंबी, सेवाभावी एवं राष्ट्रभक्त युवाओं का निर्माण देव संस्कृति विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य है एवं साथ ही यह एक ऐसा शिक्षण संस्थान है, जहाँ शिक्षा प्राप्त करना आज अनेक विद्यार्थियों का स्वप्न है।

प्रतिकुलपति जी ने विश्वविद्यालय की उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय क्षितिज पर विभिन्न क्षेत्रों में अपना परचम लहराया है; जिसने यहाँ के विद्यार्थियों के बेहतर भविष्य के लिए नए और आधुनिक मंच प्रदान किए हैं।

माननीय निर्वाचन आयुक्त ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे अभिनव कार्यों की प्रशंसा की और यह भी बताया कि मेरी माताजी ने सन् 1973 में परमपूज्य गुरुदेव से दीक्षा ली थी और उसी समय से मेरी माताजी सहित पूरा परिवार गायत्री परिवार से समर्पित भाव से जुड़ा है। अखिल विश्व गायत्री परिवार के संस्थापकद्वय की पावन समाधि पर पुष्पांजलि अर्पित कर माननीय निर्वाचन आयुक्त ने भारत के उज्ज्वल भविष्य हेतु प्रार्थना भी की।

कुछ दिनों पूर्व उत्तर प्रदेश प्रधानाचार्य परिषद् से संबद्ध प्रांत के विभिन्न महाविद्यालयों एवं कॉलेजों के 150 वरिष्ठ प्राचार्य भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय पधारे। प्रतिकुलपति जी के माध्यम से उन सभी प्रतिनिधियों को गायत्री परिवार, शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आधारभूत सिद्धांतों एवं गतिविधियों से अवगत कराया गया।

प्राचार्य परिषद् के सदस्यों को संबोधित करते हुए प्रतिकुलपति जी ने वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों एवं शिक्षण संस्थानों की भूमिका के संदर्भ में पूज्य गुरुदेव के चिंतन के अनुरूप सभी को मार्गदर्शन प्रदान किया।

इस क्रम से वरिष्ठ प्राचार्यगण अत्यंत प्रभावित हुए एवं अपने विद्यार्थियों को भविष्य में गायत्री परिवार की गतिविधियों एवं विश्वविद्यालय से जोड़ने का भाव अभिव्यक्त किया।

शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास, नई दिल्ली के राष्ट्रीय सचिव डॉ० अतुल कोठारी जी का भी हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। प्रतिकुलपति जी ने डॉ० कोठारी और उनकी टीम का हार्दिक अभिनंदन किया।

अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने विश्वविद्यालय के दृष्टिकोण और मिशन के कार्यों पर चर्चा की, साथ ही शैक्षिक कार्यक्रमों को बढ़ाने और सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए देव संस्कृति विश्वविद्यालय की सराहना की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय और केजे स्पोल्काज ओग्रानिकजोना, पोलैंड के मध्य विगत दिनों एक साझेदारी संपन्न हुई। इस हेतु एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए, जो अंतरराष्ट्रीय सहयोग और अकादमिक उत्कृष्टता विकसित करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल है। दोनों संस्थान प्रभावशाली शैक्षिक प्रथाओं के लिए एक मजबूत ढाँचा बनाने के लिए मिलकर काम करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। यह साझेदारी विकास और पारस्परिक लाभ के नए रास्ते खोलेगी।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में विगत दिनों **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** विषय पर व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि के रूप में नॉर्वेजियन नोबल पुरस्कार समिति के डिप्टी लीडर डॉ० एसले टोजे मौजूद रहे।

नोबल पुरस्कार समिति अध्यक्ष ने कहा कि भारत ने दुनिया को शांति का संदेश दिया है। शांति का संदेश मानवता और प्रकृति से जोड़ने के लिए आवश्यक है। भारत आध्यात्मिक प्रवाह का केंद्र है और यह मेरे हृदय के सबसे करीब है।

उन्होंने आगे कहा कि हमारी पीढ़ी में मोबाइल फोन का बहुत महत्त्व है। हमें चाहिए कि इसका उपयोग मनोरंजन के लिए ही नहीं, वरन रचनात्मक कार्यों के लिए, संस्कृति को जानने तथा आत्मिक विकास के लिए करना चाहिए।

नोबल पुरस्कार समिति अध्यक्ष ने यह भी कहा कि विनम्रता और शालीनता प्रत्येक भारतीय को एकता के सूत्र में पिरोने वाला है। भारत ने वैदिक संस्कृति के संवाहक के रूप में विश्वभर के लिए जो वसीयत सँजोये रखी है, वह निस्संदेह ही सकारात्मकता का परिचायक है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति एवं संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विश्व शांति के लिए गठित अंतरराष्ट्रीय सामाजिक, आध्यात्मिक मंच के निदेशक ने कुलपिता पूज्य गुरुदेव की **'वसुधैव कुटुंबकम्'** की भावना को विस्तार से बताया।

इस संदर्भ में उन्होंने कहा कि एकता, समता, शुचिता एवं ममता गायत्री परिवार का मुख्य आधार हैं। इन्हीं सद्गुणों के साथ गायत्री परिवार आगे बढ़ रहा है। इस विशिष्ट अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने मुख्य अतिथि नोबल पुरस्कार समिति अध्यक्ष को स्मृतिचिह्न आदि भेंटकर सम्मानित किया।

ज्ञात हो कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में आयोजित इस कार्यक्रम से पूर्व नोबल पुरस्कार समिति अध्यक्ष ने एशिया के प्रथम एवं एकमात्र बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र व साथ ही दक्षिण एशियाई शांति–सुलह संस्थान का भ्रमण भी किया एवं केंद्रों द्वारा भारतीय संस्कृति एवं विश्व में शांति के लिए चलाई जा रही गतिविधियों पर प्रसन्नता व्यक्त की।

विगत दिनों मणिपुर केंद्रीय विश्वविद्यालय के योग विभाग से बड़ी संख्या में विद्यार्थियों संग आचार्यों के एक समूह का प्रशिक्षण हेतु देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन हुआ। योग विज्ञान और वैकल्पिक चिकित्सा पर केंद्रित विशेष विषयों को जानने हेतु अपने 10 दिवसीय प्रशिक्षण शिविर के तहत वे विभिन्न कार्यशालाओं का हिस्सा बने।

इस प्रशिक्षण शिविर का प्रारंभ देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं गायत्री तीर्थ शांतिकुंज के भ्रमण से हुआ। प्रतिकुलपति महोदय से भेंटकर मार्गदर्शन प्राप्त करने का सुअवसर भी उन्होंने प्राप्त किया। पूरे प्रशिक्षण शिविर के दौरान विद्यार्थियों ने परमपूज्य गुरुदेव के प्रायोगिक योग दर्शन, प्रज्ञायोग साधना, मानव उत्कर्ष एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद जैसे विषयों का अध्ययन किया।

प्रशिक्षण के अंतिम पड़ाव में संपन्न हुए समापन समारोह में मणिपुर से पधारे समस्त सदस्यों को देव संस्कृति विश्वविद्यालय पधारने हेतु प्रतिकुलपति महोदय द्वारा धन्यवाद ज्ञापित कर पुनः पधारने हेतु आमंत्रण दिया गया। साथ ही प्रतिकुलपति महोदय द्वारा आशीर्वचन प्रदान करते हुए सभी उपस्थित मणिपुरी विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र भी प्रदान किए गए।

युवाओं में नैतिकता व सांस्कृतिक विरासत को पिरोये रखने के लिए संकल्पित देव संस्कृति

विश्वविद्यालय हरिद्वार में प्रवेश के लिए लाखों युवा वर्षों से सपना सँजोये रहते हैं। ऐसे युवाओं के लिए देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रतिवर्ष प्रवेश परीक्षा आयोजित करता है, जिसमें इस वर्ष भी बड़ी संख्या में युवाओं ने नई शिक्षा नीति के अनुसार संचालित हो रहे 35 पाठ्यक्रमों हेतु परीक्षा दी।

उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, पंजाब, हरियाणा, जम्मू, महाराष्ट्र, ओडिशा, गुजरात, तेलंगाना, आंध्रप्रदेश, अरुणा प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, तमिलनाडु, केरल, छत्तीसगढ़ सहित देश के 25 प्रदेशों के विद्यार्थियों ने इस परीक्षा में भाग लिया।

प्रतिकुलपति जी ने बताया कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय में इस वर्ष से नई शिक्षा नीति के अनुसार पाठ्यक्रम संचालित होंगे। भारत के 25 राज्यों के युवाओं ने बड़ी संख्या में प्रवेश परीक्षा में भाग लिया। ये विद्यार्थी स्नातक एवं परास्नातक पाठ्यक्रम के लिए हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रमुख परीक्षा केंद्रों यथा हरिद्वार, भोपाल, नोएडा, लखनऊ, पटना, कोलकाता, नागपुर व राजनांदगाँव में एक साथ प्रवेश परीक्षा आयोजित हुई। सभी परीक्षा केंद्रों में देसंविवि की टीमें परीक्षा संचालन के लिए गई हैं।

प्रतिकुलपति जी ने सभी विद्यार्थियों को शुभकामनाएँ देते हुए कहा कि परीक्षा एक उत्सव है, इसे उत्साहपूर्वक मनाने से यह शानदार परिणाम देता है। यहाँ के शैक्षणिक व पारिवारिक वातावरण में विद्यार्थियों की रचनात्मकता के साथ उनके जीवन के विकास की सभी संभावनाएँ विद्यमान हैं। ❑

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन से मिलने उनका एक मित्र पहुँचा। उसने देखा कि राष्ट्रपति लिंकन स्वयं अपने जूतों की पॉलिश कर रहे हैं।

इतने बड़े देश के राष्ट्रपति को स्वयं अपने जूतों की पॉलिश करते देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अपने मन में उठती जिज्ञासा को वह रोक न सका और उसने राष्ट्रपति लिंकन से पूछा—''मित्र! तुम अपने जूते क्या स्वयं पॉलिश करते हो ? तुम तो दुनिया के सबसे शक्तिशाली देश के राष्ट्रपति हो—ये काम करने वाले तो तुम्हें सैकड़ों मिल जाएँगे।''

राष्ट्रपति लिंकन ने उत्तर दिया—''मित्र! अपने जूते दूसरों से पॉलिश करवाने के लिए मैं इस देश का राष्ट्रपति नहीं बना हूँ। यदि मैं स्वयं अपने कार्यों को करने के लिए दूसरों पर आश्रित रहूँगा तो समाज को क्या दिशा और देशवासियों को क्या संदेश दे पाऊँगा ? परिश्रम और स्वावलंबन से ही देश का उत्कर्ष होता है।'' लिंकन की बातें सुनकर उनके मित्र का हृदय गौरव से भर उठा कि उनके देश का राष्ट्रपति कितनी ऊँची सोच और कितने विशाल हृदय वाला है। सत्य यही है कि मनुष्य दूसरों पर आधिपत्य दिखाने से नहीं, वरन अपने गुणों को श्रेष्ठ बनाने से महान बनता है।

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

श्रद्धा के बीजारोपण की साधना

परमवंदनीया माताजी के उद्‌बोधन साधकों के अंतःकरण की उस अभीप्सा को पूर्ण करते हैं, जिसमें उनकी साधनात्मक क्षुधा भी तृप्त होती है और साथ ही उनके हृदय में कुछ अच्छा करने की और ऊपर उठने की आकांक्षा भी बलवती होती है। उनका ये प्रस्तुत उद्‌बोधन नवरात्र के पावन काल में एक ऐसी ही उमंग को जगाता हुआ दिखता है। वे कहती हैं कि नवरात्र की पावन वेला संधिकाल की वेला होती है और इस समय में की गई साधना तभी फलीभूत हो पाती है, जब हम अपनी साधना में श्रद्धा का और एकाग्रता का बीजारोपण कर पाते हैं। परमवंदनीया माताजी कबीरदास जी का, मीरा का, स्वामी विवेकानंद का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि आत्मा की पुकार सुनने वाले और भगवान से प्रेम करने वाले ही साधना के पथ पर सफलता को प्राप्त कर पाते हैं। वे हर साधक को गुरुदेव के जीवन से सीखने को प्रेरित भी करती हैं। आइए, हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......... ।

श्रद्धा का बीजारोपण

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलें—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

हमारे आत्मीय परिजनो ! चैत्र के और आश्विन के जो नवरात्र होते हैं, इनको हमारे यहाँ संधिवेला कहते हैं। संधिवेला का मतलब है—दो ऋतुओं का मिलन, जैसे कि सरदियों का समापन और गरमी का आगमन। उधर गरमी का समापन होता है और इधर सरदियों का आगमन होता है। उसको हम संधिवेला कहते हैं।

संधिवेला के जो ये दोनों नवरात्र हैं, ये अपने आपमें बहुत महत्त्व रखते हैं। इनमें जो भी साधना की जाती है वह यदि मन लगा करके की गई है, श्रद्धा के साथ की गई है तो फलीभूत अवश्य होती है।

यदि श्रद्धा को नहीं लगाया गया है तो फिर उसके हाथ कुछ नहीं लगना है। क्यों साहब ! हम 27 माला रोज करेंगे, तब भी कुछ नहीं लगना है। हाँ, तब भी कुछ नहीं लगना है; क्योंकि आपने अपने इष्ट के लिए श्रद्धा का बीजारोपण तो किया ही नहीं, आपने श्रद्धा को नहीं लगाया, आपने अपनी निष्ठा को नहीं लगाया।

माला तो जरूर फेरी, आपने ढाई घंटा तो जरूर लगाया, लेकिन वह तो आपका निरर्थक चला गया। क्यों साहब ! निरर्थक कैसे चला गया ? आप और आपके इष्ट एकाकार नहीं हुए न ? आपने अपना सब कुछ इष्ट के तईं समर्पित कहाँ किया ?

आपका प्रेम इष्ट के प्रति कहाँ रहा है ? आपका मन तो न मालूम कहाँ-कहाँ डाल-डाल और पात-पात पर डोल रहा है। कभी घरवालों की याद आएगी, कभी बच्चों की याद आएगी।

बहुत दिन हो गए, इसी तरह नवरात्र का अनुष्ठान हो रहा था, तो एक लड़का—एक-दो दिन तो चुप रहा, लेकिन तीसरे दिन बोला—माताजी ! मुझे तो घर की बहुत याद आ रही है। तो बेटा ! तू अभी जा, तुरंत जा, तेरे दिमाग में घरवालों की याद सता रही है तो तू अच्छी तरह से मन लगा करके अनुष्ठान कर ही नहीं सकता।

अगर जीभ पर काबू नहीं है, यहाँ के प्रसाद पर विश्वास नहीं है कि हमें जो यहाँ भोजन मिल रहा है, वह भोजन नहीं, प्रसाद मिल रहा है और इस प्रसाद से हमको बल मिलेगा, हमें शक्ति मिलेगी। यह न करके आप बाहर जाते हैं और वहाँ बाहर कुछ खाकर के आते हैं। बाहर क्यों खाते हैं, जबकि हमने एक टाइम का भोजन आपके लिए भरपूर रखा है।

जितना आपके पेट में समाये, उतना आप खा लीजिए, नहीं तो जैसे कोई फलों पर अनुष्ठान करते हैं, कोई दूध पर करते हैं, कोई काहे पर करते हैं, पर आपके लिए तो इतनी छूट है कि आप लोग यहाँ चौके में जो भोजन बनता है, आप इसी में अपनी तृप्ति को मानिए। इसी में आप तृप्त हो जाइए कि हमें जो प्रसाद मिल रहा है, भरपेट मिल रहा है और यह प्रसाद हमें जिंदगी भर काम देगा। इस बात को आपने अपने मन में रखा कहाँ ? आप तो बाहर गए और देखा कि समोसा सिक रहा है तो चलो खा लें, साहब ! नहीं माताजी देख रही हैं।

एकाग्र होकर साधना करें

यहाँ प्राण प्रत्यावर्तन सत्र चल रहा था, तो पहले ऐसा था कि किसी साधक को बाहर नहीं निकलने देते थे। तब 5 दिन का सत्र होता था। पाँचों दिन उसको यहीं रहना था। जो कुछ है यहीं चिंतन-मनन कर, अपने से विचार कर कि आखिर भगवान ने मनुष्य का शरीर दिया है तो किसी के काम आएगा कि नहीं आएगा। किसी को बाहर नहीं जाने देते थे।

मेरे यहाँ एक खिड़की थी और मैं उससे देखती रहती थी। भूला-भटका जो कोई बाहर दिखा, मैंने झट किसी से बुलवाया और फिर उससे सवाल-जवाब किया कि तू क्यों जा रहा था ? क्या कारण था जो बाहर जा रहा था। जब मना कर दिया गया है कि आप मत जाइए, आप गंगा जी मत जाइए, कहीं मत जाइए।

मेरी उपासना को फलित करने का श्रेय उस जीवन-साधना को ही दिया जाना चाहिए, जिसमें अंतरंग की निर्मलता और बहिरंग की उत्कृष्टता को अविच्छिन्न रूप से जोड़ा और सँजोया जाता रहा।

—परमपूज्य गुरुदेव

जहाँ आप बैठे हैं, यहीं आपका सप्त सरोवर है, यहीं आपकी गंगा जी हैं। यहाँ गंगा जी के कुएँ हैं। सब कुछ यहाँ आपके लिए मुहैया है, फिर आप क्यों भागते हैं वहाँ ? वहाँ भागने से आपका क्या भला होगा ? नहीं साहब ! हम गंगा जी नहाएँगे तो हमारा बहुत भला हो सकता है, सारे पाप कट जाएँगे।

नहीं साहब ! आपका एक भी पाप दूर नहीं होगा, जरा भी नहीं होगा। क्यों नहीं होगा ? क्योंकि आपने पाप को हटाने की कोशिश तो की नहीं और समझ लिया कि नहाने से हमारे पाप चले जाएँगे। नहाने से कैसे पाप चले जाएँगे ? नहाने से होता तो मछली भी उसी में रहती है, तो मछली क्यों नहीं तर

जाती है? एक गाना बहुत अच्छा है, मुझे पूरा याद नहीं रहा, ये आर्य समाज का है। आर्य समाजवालों ने इसे बनाया था।

इसमें उन्होंने कहा है—गंगा के नहाये से क्या पापी नर तरते हैं तो मीन क्यों न तरी जाको जल में ही घर है। शंख के बजाये क्या पापी नर तरते हैं, तो गधा क्यों न तरा, जिसका शंख-सा ही सुर है। उसका तो शंख-सा सुर है, वह क्यों नहीं तरता है? इसमें भावना मिलाने की जरूरत है। इसमें श्रद्धा को मिलाने की जरूरत है।

श्रद्धा इष्ट से मिलाएँ

यदि आपने अपनी श्रद्धा इष्ट के लिए मिला दी है, तो फिर आप उसे पा जाएँगे। कबीर ने, मीरा ने और दादू ने तथा अन्य भक्तों ने, जिन्होंने पाया है, उसे श्रद्धा के बल पर पाया है। अच्छा तो बताइए मीरा कहाँ तक पढ़ी थी? बिना पढ़ी-लिखी थी? लेकिन भक्ति के क्षेत्र में वह आगे रही और नारी जागरण का बहुत काम मीरा ने किया है। इसी तरीके से शबरी कहाँ तक पढ़ी थी? लेकिन भगवान राम शबरी के यहाँ गए और शबरी के यहाँ जाकर के जूठे बेर खाए।

क्यों साहब? ऐसा क्या आन पड़ा था? क्या उनके लिए और कुछ खाने को नहीं था? खाने को सब कुछ था, लेकिन भक्त की भावना खाने को कहीं भी नहीं थी।

वहाँ भक्त की भावनाएँ थीं और उसकी श्रद्धा थी। पढ़ी-लिखी भी नहीं थी। बहुत श्लोक जानती हो और कर्मकांड जानती हो, वह बेचारी कुछ नहीं जानती थी। वह मतंग ऋषि के आश्रम में रहती थी, अछूत थी।

वह इतना भर जानती थी कि जिस रास्ते से मतंग ऋषि जाएँगे और उनके शिष्य जाएँगे तो कहीं काँटा न लग जाए। तो वह उनके गंगास्नान जाने से पहले ही झाड़ू लगाया करती थी। झाड़ू लगाने का उसका यह नित्य क्रम था और साथ ही वहाँ रोज फूल लगाने का भी था कि कभी भगवान राम मेरे घर आएँगे। भला कैसे राम आएँगे जरा बताइए? पर उसकी भावना थी और उसकी श्रद्धा थी।

भगवान राम शबरी के यहाँ पहुँचे और भगवान कृष्ण मीरा के पास पहुँचे। मीरा ने अपनी श्रद्धा के बल पर पत्थर के टुकड़े में से कृष्णगोपाल निकाल लिया। उसने श्रद्धा से पैदा किया और ऐसा पैदा किया कि भगवान उसके साथ नाचता भी था और भगवान गरल भी पीता था, जहर भी पीता था। मीरा के लिए जहर दिया गया, पर मीरा ने नहीं, कृष्ण ने उस जहर को पिया। जहर उसके लिए अमृत हो गया। किसने पिया? उसे भगवान कृष्ण ने पिया है।

एक जगह एक उदाहरण आता है। मुझे याद नहीं रहा जरा कि किसी को चोट मारी तो वह कृष्ण की पीठ पर जा करके लगी। साँप छोड़ा था, तो उसने जब भक्त को काटा, तो उसके बजाय भगवान की उँगली नीली पड़ गई, ऐसा सुना गया है। श्रद्धा के बल पर ही रामकृष्ण परमहंस ने एक काले पत्थर में से काली को उत्पन्न किया और वे कालीमय होते हुए चले गए। कौन? रामकृष्ण परमहंस।

विवेकानंद का भी ऐसा ही हाल हुआ। विवेकानंद एक नौकरी माँगने के लिए गए और उन्होंने यह कहा कि बेटा मेरे पास तो नौकरी नहीं है, तू काली माँ के पास चला जा और जब उन्होंने काली माँ का विराट स्वरूप जो देखा, तो वहीं वे माँ के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने कहा कि बस, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। मेरी परीक्षा ली गई थी, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे तो केवल अपने गुरु का काम करना है, अपने भगवान का काम करना है। वे कितने ऊँचे उठते हुए चले गए।

विवेकानंद की एक शिष्या थी—सिस्टर निवेदिता, जो अपने देश को छोड़ करके हिंदुस्तान में आई और हिंदुस्तान में आ करके उसने नारी जागरण का बहुत कार्य किया, बहुत काम किया। हमारे समय में तो भैया महिलाएँ अपने घर में से निकलती भी नहीं हैं।

नारियों को आज तो कामुकता की गुड़िया बना दिया गया है, चाहे जैसे इस गुड़िया को नाच नचाओ और चाहे जो ला दो पहनने के लिए, बस सजने-धजने को वह अपना स्वरूप समझने लगती है कि हमारा जो स्वरूप है, वह सजने-धजने का है। एक और दूसरा काम है बाल-बच्चे पैदा करने का, दो ही काम हैं और बाकी की जो आत्मा की भूख है वह?

नहीं आत्मा की कोई भूख नहीं होती है। नहीं साहब! आत्मा की भूख होती है। परमात्मा को पाने के लिए आत्मा की भूख होती है। आत्मा जब ऊँची उठती है तो स्वतः ही उसका व्यक्तित्व ऊँचा उठता हुआ चला जाता है। जब तक उसकी आत्मा की भूख पूरी नहीं होती, आत्मिक दृष्टि से वह ऊँचा नहीं उठता है तो वह बौना ही बना रहता है। फिर ऊँचा कैसे उठेगा?

आत्मा की पुकार सुनें

बेटे! जो व्यक्ति अपनी आत्मा की पुकार को स्वतः ही सुनेगा, अपने सोये हुए भगवान को स्वयं ही जगाएगा, तो फिर भगवान उसका साथ देता हुआ चला जाएगा। जैसा कि मैंने अभी कहा था कि मीरा के भगवान ने उसका साथ दिया और उसने कहा—**सखी री मैंने गिरधर लीनो मोल।**

तुमने किससे मोल लिया है? और कितने दामों में लिया है, कितने रुपये में लिया है? उसने कहा कि नहीं मेरा भगवान बिकता नहीं है। मेरे भगवान की तो प्रेम और निष्ठा के साथ, श्रद्धा के साथ शादी होती है और उसी से वह बिकता है।

उन्होंने कहा—सखी री मैंने लीणो गिरधर मोल, काहे से? श्रद्धा से। श्रद्धा से लीन्हा प्रेम तराजू तोल, प्रेम की तराजू में मैंने तोला है। उन्होंने

उल्लेख आता है कि 'महर्षि वसिष्ठ ने राजा दशरथ के यहाँ पुत्र-प्राप्ति हेतु कामेष्टि यज्ञ कराया।'

प्रसाद के तीन भाग किए गए। पहला भाग रानी कौशल्या को, दूसरा रानी कैकेयी को व तीसरा रानी सुमित्रा को भी बराबर दे दिया गया।

कैकेयी, स्वयं का भाग दूसरे स्थान पर मिलने से बड़ी क्रोधित हुईं व क्रोध में उन्होंने वह भाग उठाकर फेंक दिया।

कहते हैं कि एक पक्षी वह भाग लेकर उड़ गया व अंजनीक पर्वत पर माता अंजनी के हाथ में डाल आया।

उसी अंश से अंजनीनंदन हनुमान का जन्म हुआ। अपना भाग चले जाने पर कैकेयी रोने लगीं तो उन्हें रानी कौशल्या व सुमित्रा ने अपने-अपने भाग का आधा अंश दे दिया। इसीलिए उनका पुत्र दोनों माताओं के सम्मिलित गुणों को लेकर पैदा हुआ।

पहले एक और बात कही। उन्होंने कहा—**सखी री मैंने गिरधर नौकर राखो सी, चाकर राखो सी।** मैंने तो चाकर रखा है भगवान को। अरे चाकर तो प्रोविडेंट फंड माँगेगा, न जाने क्या-क्या माँगेगा?

ये भी बेकार है तो फिर क्या करना चाहिए? भगवान को मोल ले लेना चाहिए। अच्छा मोल ले लिया भगवान को।

मैं आपको यह बात बता रही हूँ, जो वास्तविकता है। इसमें आपकी श्रद्धा अटूट है कि नहीं है? आप जिस समय जप कर रहे हैं, उस समय आपकी भावनाएँ कहाँ हैं? आपकी भावनाएँ घर-गृहस्थी के अंदर घूम रही हैं, व्यापार में घूम रही हैं या अपने इष्ट के प्रति लगाव है आपका? जहाँ प्रेम होता है, वहीं मन भागता है। व्यापार में मन होगा, तो व्यापार में भागेगा। नौकरी में होगा, तो नौकरी में भागेगा। बीबी-बच्चों में होगा, तो बीबी-बच्चों में भागेगा। वह तो वहाँ भागेगा, इष्ट के प्रति है कहाँ?

करें भगवान से प्रेम

भगवान के प्रति हमारा प्रेम है कहाँ? यदि हमारा प्रेम सच्चा है तो भगवान हम से दूर नहीं है। तो अब आप कहेंगे कि यह बताइए कि उसकी परिभाषा क्या है?

उसकी एक ही परिभाषा है और वो है संवेदना की परिभाषा। संवेदना के रूप में भगवान हमारे निकट आता हुआ चला जाता है और हम बनते हुए चले जाते हैं और दूसरों को बनाते हुए चले जाते हैं।

हमारे यहाँ मथुरा में एक पिसनहारी महिला हुई है। वह बालविधवा थी। जब वह विधवा हुई तो लोगों ने आ करके यह कहा कि हम तुम्हारा भरण-पोषण करेंगे और हम तुम्हारे साथ हैं। हम तुम्हारे भाई-बहन हैं। कोई उसके भाई तो थे नहीं और पिता भी नहीं थे। अकेली महिला थी, तो उसने कहा कि देखो भाई आप सब हैं तो जरूर, लेकिन आपकी मुझे आवश्यकता नहीं है। मेरे दो हाथ हैं, यही मेरे दोनों भाई हैं। एक मेरा परमार्थ करेगा, दूसरा पुरुषार्थ करेगा। उसने चक्की पीस करके ही इतने पैसे इकट्ठे कर लिए थे, जिससे उसने एक कुआँ बनवाया।

पिसनहारी का कुआँ

सारे मथुरा में खारे पानी के कुआँ हैं और वह एक ही कुआँ सारे मथुरा में मीठे पानी का है। वही एक कुआँ मीठा है। आज तो होटलों में बरात ठहरती है। धर्मशाला तो कोई बुक कराता ही नहीं है, होटल होते हैं।

पहले तो धर्मशाला में या पेड़ों के नीचे ही बरात पड़ी रहती थी, तो वहाँ पेड़ लगा दिए गए। और छाया में बरात ठहरती थी और उस कुएँ का पानी इतना मीठा था कि सारे कुएँ एक तरफ और वह कुआँ एक तरफ।

ये क्या हो गया? ये उसका समाज के प्रति और व्यक्तियों के प्रति प्रेम था कि मानव जाति के लिए मैं एक ऐसा काम करके जाऊँ, जिससे कि वे यहाँ कुएँ पर पानी पिएँगे। यहाँ ठहरेंगे। राहगीर यहाँ शांति पाएगा। उसे क्या मालूम था कि यहाँ इतना मीठा पानी निकल सकता है। देखो पिसनहारी एक महिला थी और इतनी गरीब होते हुए भी उसने कुछ अंश निकालना शुरू किया और उसी से यह सब हो गया है। यह उसकी निष्ठा और श्रद्धा थी ।

हमारी श्रद्धा कहाँ तक है? हमारी श्रद्धा तो इसी के लायक है कि हमें बच्चा दे दीजिए या हमें नौकरी दे दीजिए या अमुक दे दीजिए। ये तो पुरुषार्थ से भी कमाया जा सकता है। एक बच्चे की बात तो हम नहीं कहेंगे, पर बाकी का तो हम यह कह सकते हैं कि यदि हमारे अंदर सामर्थ्य है, पुरुषार्थ है, तो हर चीज मुहैया करा सकते हैं। पुरुषार्थ होना चाहिए।

फिर भगवान से हम ये क्यों माँगें? भगवान से माँगें तो हम वह चीज माँगें, ताकि हम तो निहाल हों ही, आने वाले हमारे साथी, हमारे पड़ोसी,

सारा-का-सारा हमारा समाज, हमारा राष्ट्र निहाल होता हुआ चला जाए।

लोकहित के लिए भावना जगाएँ

ये भावनाएँ रहती हैं क्या? कभी नहीं रहती हैं। यों तो मैंने सवेरे कहा था कि गंगा के किनारे जाओ, समुद्र के किनारे जाओ, घोंघे ढूँढ़ के लाओ, गंगा के किनारे जाओ और प्यासे ही चले आओ। **जल बिच मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी**। ये गंगा के किनारे भी बैठे रहे और प्यासे भी चले आए।

ये क्या है? ये क्यों करके आए? ये गंगा के किनारे गए हैं तो गंगा जैसा पवित्र, उज्ज्वल, निरंतर गतिशील रहने वाला ऐसा तो बनना ही चाहिए। यह गंगा का उदाहरण है। भगीरथ का उदाहरण है। भगीरथ और परशुराम ने तपस्या की थी और उन्होंने वरदान पाया, अपने लिए नहीं, लोकहित के लिए माँगा।

भगीरथ ने माँगा तो गंगा को पृथ्वी पर लाने में वे समर्थ हुए,जो पतितपावनी गंगा आज भी अनवरत रूप से अभी भी बह रही है। परशुराम और राम—ये दोनों एक ही समय के हैं। दोनों में कुछ झगड़ेबाजी हो गई। दोनों में कुछ लड़ाई-झगड़ा हो गया।

उन्होंने कहा—अच्छा तो तुम इस धनुष को उठा दो, तुम धनुष को उठा दोगे तो हम तुमसे दीक्षा ले लेंगे। तो उन्होंने कहा अच्छी बात है। उन्होंने उठा दिया, तो उन्होंने फिर दीक्षा ले ली। उन्होंने कहा कि आप तो ब्राह्मण हैं और मैं क्षत्रिय हूँ, तो यह ऐसे कैसे हो सकता है? नहीं, अब तो आपको देनी पड़ेगी? तो उन्होंने दीक्षा दी।

फिर उन्होंने कहा कि देखो ये फरसा जो आपको संहार के लिए दिया गया है, अब आप इससे मिट्टी खोदो। मिट्टी खोदी जाएगी। बिलकुल, जो हम कह रहे हैं, सो कह रहे हैं। जब आपने गुरु ही मान लिया है तो आपकी ये शक्तियाँ विनाश के लिए नहीं हैं। अब इस फरसे से आप मिट्टी खोदेंगे। अच्छा जी, मिट्टी खोदेंगे, फिर भगवान परशुराम हिमालय चले आए। यहाँ झोंपड़ी बनाई। उन्होंने चारों तरफ पौधे लगाए। पौधे लगाए तो राम जी आए।

उन्होंने कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा कि देखो जो मैं कर रहा हूँ न, यही तुम्हें करना चाहिए। उन्होंने कहा कि मैं रचनात्मक दिशा में काम कर रहा हूँ, आप भी ऐसा करिए। अगले जन्म में आप मेरे गुरु बनेंगे और मैं आपका शिष्य बनूँगा। उन्होंने कहा—ऐसा कैसे हो सकता है? उन्होंने कहा ऐसा ही होगा। आप गुरु बनेंगे और मैं शिष्य बनूँगा। इस समय तो मैं गुरु हूँ आप शिष्य हैं, अगले जन्म में मैं गुरु बनूँगा।

गुरुदेव से सीखिए

यह उदाहरण पूर्णतया गुरुजी के ऊपर लागू होता है। उन्होंने सारी जिंदगी रचनात्मक दिशा में ही सोचा और रचनात्मक दिशा में ही वे आगे बढ़ते हुए चले गए और जो उनसे जुड़े थे, उनको भी रचनात्मक दिशा में ही ले करके वे आगे बढ़ते हुए चले गए और उनको भी बढ़ाते हुए चले गए। जरा-जरा सी लड़कियाँ हैं, कहीं जा करके बोल देती हैं। कई बार उनका कितना स्वागत होता है, वे कितना काम करती हैं। गुजरात में चले जाइए, मैं समझती हूँ कि शायद ही ऐसा कोई घर होगा, जिसमें महिलाएँ घर से निकल करके बाहर न आई हों और काम न किया हो।

गुजरात को छोड़ दीजिए और भी अन्य प्रांत हैं, जिनमें हमारी लड़कियाँ बहुत कुछ काम कर रही हैं। गुरुजी ने वह करके दिखा दिया कि हम क्या नहीं कर सकते हैं और हम क्या नहीं करा

सकते हैं। कर भी सकते हैं और करा भी सकते हैं। उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था— स्त्रियों का गायत्री अधिकार। उसका इतना विरोध हुआ कि सारे पंडे-पुजारी एक हो गए और उधर में आर्यसमाजी अपने ढंग से और सनातनी अपने ढंग से सब विरोधी हो गए।

अरे! बाबा हमने किसी का क्या बिगाड़ा है, हमने पुस्तक लिखी है तो ऐसा क्या गुनाह किया है? आप महिलाओं को यज्ञोपवीत पहनाते हैं। तो क्या हर्ज है? पुरुष पहन सकता है तो फिर महिलाएँ क्यों नहीं पहन सकती हैं? यदि पुरुष की दो शादियाँ, 3-3 शादियाँ हो जाती हैं और रखैल भी रख लेता है, तो मान लीजिए कोई बाल विधवा हो जाती है, तो उसकी शादी कर देंगे तो क्या हर्ज है? कोई अपने सतीत्व पर रहती है, बड़ी मेहरबानी, रहना ही चाहिए।

शादी एक बार होती है, पर मान लीजिए कोई ऐसी घटना घटित होती है, तो क्या जरूरी है कि वह सारी जिंदगी अपनी उम्र ऐसे ही बिता दे। क्यों बिता दे? सारे नियम-कायदे केवल महिलाओं के लिए हैं, पुरुषों के लिए नहीं हैं। खराब तो पुरुषों के लिए भी हैं और महिलाओं के लिए भी हैं। यदि अच्छे हैं, तो फिर जो नियम उनके लिए लागू हैं, वही नियम उनके लिए लागू क्यों नहीं हैं?

(क्रमशः समापन अगले अंक में)

इक्ष्वाकु वंश, भगवान राम का वंश था। उसमें एक से बढ़कर एक प्रतापी व धर्मनिष्ठ राजा हुए। ऐसे ही एक राजा अंबरीश, नाभाग के यहाँ पैदा हुए। राजा अंबरीश, भगवान विष्णु के अनन्य भक्त थे। एक बार उन्होंने एकादशी का व्रत किया। अगले दिन पारायण करने का संकल्प था कि दुर्वासा ऋषि ने उनसे मिलने का व उनके साथ बैठकर भोजन करने का निवेदन भेजा, जिसे राजा ने आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया। राजा पारायण करने बैठे तो दुर्वासा ऋषि को आने में विलंब हो गया।

मुहूर्त निकला जा रहा था, इसलिए राजा ने चम्मच भर जल ग्रहण कर लिया। दुर्वासा ऋषि पहुँचे तो उन्हें लगा कि राजा भोजन करके बैठे हैं। क्रोध में उन्होंने राजा अंबरीश को कृत्या से नष्ट हो जाने का शाप दे दिया। कृत्या प्रकट होकर राजा को जलाने चली तो भगवान विष्णु को रक्षार्थ सुदर्शन चक्र भेजना पड़ा।

अब दुर्वासा ऋषि को सत्य का पता चला कि राजा तो भूखे बैठे थे। उन्होंने अकारण ही शाप दे दिया। तो वे क्षमा माँगने राजा के पास पहुँचे। राजा ने उन्हें कहा—"ऋषिवर! आप पूज्य हैं, आप मुझसे क्षमा माँगें, यह उचित नहीं है—मैं ही आपसे क्षमा माँग लेता हूँ।" उनकी इस शालीनता से ऋषि व भगवान, दोनों ही उन पर अत्यंत प्रसन्न हो गए।

साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला

भूगर्भ में प्रकाश का प्रवेश

भूगर्भ में प्रकाश का प्रवेश इसमें अनेकों सकारात्मक व सार्थक परिवर्तन लाएगा। धरती हम सबके जीवन को दो रूपों में पोषण व संसाधन प्रदान करती है। इनमें से इसका पहला रूप है—भूतल; जिस पर हम रहते हैं, कृषि करके अन्न उपजाते हैं। लहलहाती फसलें, अन्न-शाक, सब्जियाँ, फल इसी की देन हैं।

भूतल की मिट्टी में हम सब खेलते हैं, भवन-मकान बनाते हैं। इसी पर अनेकों तरह की संरचनाएँ रचकर सभ्यता, संस्कृति और समृद्धि में अभिवृद्धि करते हैं, परंतु धरती के अनुदान-वरदान यहीं पर समाप्त नहीं होते। उसके और भी असंख्य अनुदान-अवदान हैं, जो हमें भूगर्भ से प्राप्त होते हैं। यह धरती माता का दूसरा रूप है। अपने इस रूप में वह रत्नगर्भा है। जल, खनिज, धातुएँ, रत्न आदि हमें यहीं से प्राप्त होते हैं।

प्राचीन युग के ऋषिगणों ने इसका ज्ञान अर्जित किया था। इसे समझा था। अपने इस ज्ञान के आधार पर उन्होंने ऋग्वेद में घोषित किया—**अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः।**—ऋग्वेद 1.22.16। इस मंत्र में उन्होंने बताया कि पृथ्वी की सात परतें हैं। विष्णु इनमें विक्रमण करते हैं। मंत्र में 'धामभिः' के द्वारा परतों का निर्देश है। विक्रमण शब्द से पृथ्वी के अंदर परमाणुओं की गति एवं परिवर्तन सूचित होता है।

इस क्रम में महर्षियों ने यह भी बताया कि पृथ्वी के अंदर अग्नि है। यह अग्नि तड़ित-रेणु विकिरण शक्ति 'रेडियो एक्टिविटी' के रूप में निरंतर जल रही है। यह पृथ्वी के भीतर ताप के उत्पादन का मुख्य कारण है। पृथ्वी के भिन्न-भिन्न स्तरों में रेडियोएक्टिव पदार्थ प्रचुर परिमात्रा में हैं। यही पृथ्वी के अंतर्दाह 'प्लूटोनिक इनर्जी' के मुख्य कारण हैं।

भविष्य में यदि जीवन को सुखी, समुन्नत व समृद्ध होना है; तो असुरों व असुरता को भूतल व भूगर्भ, दोनों से ही बहिष्कृत होना होगा। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने प्रकृति के प्रत्येक तल पर, ब्रह्मांड के हर आयाम पर महाबली असुरों से समर आरंभ किया है। उनकी सौवर्षीय तप-साधना का उद्देश्य यही रहा है—'निसिचर हीन करउँ महि' असुरों से विहीन धरती कर देना।

यजुर्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण आदि में इसका विस्तृत वर्णन है। 1. **अग्निर्भूम्याम् ओषधीषु।** अथर्व.12.1.19। 2. **'अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तम् अजस्रमित्'**—यजु. 11.31 3. **'अग्निगर्भा पृथिवी'**—शत. 6.5.1.11 4. **'यथाग्निगर्भा पृथिवी यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी।'** बृहदा. उप. 6.4.22। इन और ऐसे अनेक मंत्रों में भूगर्भ की अग्नि का वर्णन मिलता है।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

इस भूगर्भीय अग्नि का प्रभाव-परिणाम बताते हुए अथर्ववेद में कहा गया है—**'याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी, यस्यामासन् अग्नयो ये अप्स्व१न्तः।'**—अथर्व. 12.1.37। भूगर्भीय अग्नि के कारण पृथ्वी में गति व कंपन है। मंत्र में 'विजमाना' का अर्थ है—हिलना, काँपना, काँपते हुए चलना।

इसके अतिरिक्त वेदों में यह भी कहा गया है कि पृथ्वी हम मनुष्यों को अनेकों निधियाँ प्रदान करती है—**'पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु, पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।** ऋग्. 3.51.5।' पृथ्वी में जो निधियाँ हैं, जो खनिज व रत्न के भंडार हैं, जो भिन्न-भिन्न धातुएँ हैं; वही तो परमात्मा द्वारा प्रदत्त प्राकृतिक संसाधन हैं, जो हमें धरती अपने भूगर्भ से सौंपती रहती है।

भूगर्भ की यह महिमा व महत्त्व—जिसे प्राचीन युग के ऋषियों ने जाना, उसे वर्तमान युग के वैज्ञानिकों ने भी समझा है। तभी तो आधुनिक समय में यह भूगर्भ विज्ञान या जियोलॉजी के रूप में विकसित व समृद्ध रूप में दिखाई देता है। देश व दुनिया में प्रायः सभी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं शोध संस्थानों में इस पर अध्ययन-अनुसंधान का क्रम अनवरत चल रहा है।

इसके अंतर्गत खनिज विज्ञान, तलछट विज्ञान, खनन इंजीनियरिंग एवं भू-मापन आदि अनेकों विषय आते हैं। इसमें ठोस पृथ्वी का निर्माण करने वाली शैलों तथा उन सभी प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है; जिनके कारण भूपर्पटी, स्थूल रूपों व शैलों का विकास होता है। वर्तमान समय में इसकी अनेकों शाखा-प्रशाखाओं का अध्ययन-अनुसंधान होने लगा है—1. ऐतिहासिक भूविज्ञान, 2. भौतिक भूविज्ञान, 3. आर्थिक भूविज्ञान, 4. संरचनात्मक भूविज्ञान, 5. खनिज विज्ञान, 6. खनन भूविज्ञान, 7. भू-आकृति विज्ञान, 8. शैल विज्ञान, 9. जीवाश्म विज्ञान एवं 10. व्यावहारिक भूविज्ञान। इन सभी का संबंध किसी-न-किसी रूप में धरती की गहरी परतों से है।

जीवन के लिए जितना महत्त्व भूतल का है, उतना ही महत्त्व भूगर्भ का भी है। भूगर्भ के बिना भूतल सुरक्षित नहीं है। आसुरी अँधियारे का प्रभाव भूतल पर बंजर जमीन, भूमि की आर्द्रता व उर्वरता नष्ट होना तो है ही। इसके अलावा वृक्ष-वनस्पतियों एवं पशु-पक्षियों की अनेकों प्रजातियाँ भी इसके कारण नष्ट हो रही हैं।

नियति ने निश्चय किया है, परमात्मा ने विधान रचा है कि प्रकाश के अवतरण व प्रसारण का केंद्र भी भारतभूमि ही बनेगी। सबसे पहले भारत की धरती के भूतल व भूगर्भ-क्षेत्र प्रकाश से प्रभावित होंगे। बाद में इस प्रभाव से समूचे विश्व का भूतल व भूगर्भ का परिक्षेत्र प्रभावित होगा। भारत के साथ धीरे-धीरे समूची विश्व-वसुधा का भूगर्भ क्षेत्र विपदाओं की जगह विभूतियों को प्रकट करेगा।

मानव जीवन—व्यक्ति, परिवार एवं समाज के तल पर तथा गाँव, प्रांत, देश व विश्व के स्तर पर अनेकों तरह के वैर-वैमनस्य के बीच में फँसा-उलझा है। रोगों, बीमारियों, महामारियों की कथा तो है ही। इसी के साथ प्राकृतिक आपदा-विपदा ने भूतल व भूगर्भ दोनों को ही अपना डेरा बना लिया है। भूगर्भ से प्राप्त होने वाली निधियों-संसाधनों में कमी आई है; जबकि भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाएँ, विपदाएँ असाधारण ढंग से समूचे विश्व में बढ़ी हैं। यह सब

हुआ है—असुरों व उनके अँधियारे के भूगर्भ में प्रवेश व निवास के कारण। भविष्य में यदि जीवन को सुखी, समुन्नत व समृद्ध होना है; तो असुरों व असुरता को भूतल व भूगर्भ, दोनों से ही बहिष्कृत होना होगा। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने प्रकृति के प्रत्येक तल पर, ब्रह्मांड के हर आयाम पर महाबली असुरों से समर आरंभ किया है। उनकी सौवर्षीय तप-साधना का उद्‌देश्य यही रहा है—**'निसिचर हीन करउँ महि'** असुरों से विहीन धरती कर देना।

उनके इस प्रण में धरती के भूतल एवं भूगर्भ, दोनों ही आयाम शामिल हैं। अब वह समय आ गया है, जब असुरों को भूतल और भूगर्भ से जाना पड़ेगा। मरण या पलायन, उनके सामने दो ही मार्ग बचे हैं। महाविनाश करने वालों के महाविनाश की घड़ी आ पहुँची है। धरती के भूतल व भूगर्भ में आपदा-विपदा खड़ी करने वालों के लिए आपदा-विपदा का घेरा कसता जा रहा है। नियति ने असुरों व आसुरी अँधियारे के निष्कासन, निवारण व निराकरण का निश्चय कर लिया है।

यह कार्य वर्ष 2026 ई० का अंत होते-होते तक पूरा कर लिया जाएगा और तब इसी के साथ भूगर्भ में प्रकाश का प्रवेश होने लगेगा। तब यहाँ से आपदाएँ नहीं, संपदाएँ निकलेंगी। प्रकाश का प्रवेश होने से भूगर्भ की संरचनाओं में अनेकों तरह की सकारात्मक फेर-बदल होगी। फेर-बदल तो अभी भी हुई है—हो भी रही है, लेकिन वह सबकी सब नकारात्मक है। इससे सृजन कम—विनाश के सरंजाम अधिक जुटे हैं। अब बदली हुई स्थिति में यह सब भी बदलेगा। भूगर्भ के परिवर्तनों से असुरक्षित हुआ भूतल फिर से सुरक्षित, संपन्न व समृद्ध हो सकेगा।

भूगर्भ फिर से अपना भूगर्भ-जल, खनिज, धातुभंडार व रत्नभंडार प्राप्त कर लेगा। प्रकाश के प्रवेश, वास व आधिपत्य से यह स्थिति पहले से भी कहीं बेहतर ढंग से संपन्न व समृद्ध होगी। रत्नगर्भा धरती फिर से रत्नभंडार को जन्म देगी। धरती और धरतीवासियों ने शताब्दियों-सहस्राब्दियों से अनेकों संताप सहे हैं, लेकिन अब और नहीं। इतिहास के ज्ञान को बटोरें, पुराणों के पृष्ठ पलटें, तो यही पता चलता है कि महाभारतकाल के थोड़े समय के बाद ही परिस्थिति परिवर्तित होने लगी थी। महाराज परीक्षित के समय में कलियुग का आगमन हो गया था। फिर बढ़ते समय के साथ इसका प्रभाव भी बढ़ता गया। भारतभूमि पर आक्रांताओं का आक्रमण, आपस में फूट-वैमनस्य बढ़ने लगा था।

असुरों और उनके अँधेरों को सबसे अधिक भारत की धरती ने सहन किया है। इसलिए नियति ने निश्चय किया है, परमात्मा ने विधान रचा है कि प्रकाश के अवतरण व प्रसारण का केंद्र भी भारतभूमि ही बनेगी। सबसे पहले भारत की धरती के भूतल व भूगर्भ-क्षेत्र प्रकाश से प्रभावित होंगे। बाद में इस प्रभाव से समूचे विश्व का भूतल व भूगर्भ का परिक्षेत्र प्रभावित होगा। भारत के साथ धीरे-धीरे समूची विश्व-वसुधा का भूगर्भ-क्षेत्र विपदाओं की जगह विभूतियों को प्रकट करेगा। सबसे पहले ये दृश्य पर्वत-शृंखलाओं में दिखाई देंगे।

अब यह आवश्यक हो गया है कि हमें अपनी जमीन और उसके संसाधनों को संरक्षण की दृष्टि से अधिक महत्त्व देना होगा। यह एक गूढ़ सत्य है कि धरती ही वह एकमात्र स्रोत है, जिससे हम मनुष्यों को सभी प्रकार की संपदा हस्तगत होती है। अन्न, कपड़े, खनिज तथा जीवनयापन के सभी साधन धरती माँ की कृपा से ही प्राप्त होते हैं।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

अपनों से अपनी बात

आत्मशुद्धि ही तप का आधार

मनुष्य का जीवन उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलता है। जन्म-जन्मांतरों के क्रम में से गुजर चुकने के उपरांत जब मानवीय काया, जीवात्मा को प्राप्त होती है तो उसके पीछे का निहित उद्देश्य श्रेष्ठ कर्मों को संपन्न करते हुए शांति, सद्गति व मोक्ष को प्राप्त करना समझा जा सकता है।

शब्दों की दृष्टि से कोई सा भी नाम दिया जाए—इन सभी परिणामों को प्राप्त करने के लिए मनुष्य की यात्रा आत्मनिरीक्षण, आत्मपरिमार्जन व आत्मशोधन की सीढ़ियों से ही करनी पड़ती है। कर्मबंधनों से मुक्ति का सौभाग्य विरलों को मिलता है और यह प्राप्त करने के लिए, चित्त की शुद्धि, शुभकर्मों से युक्त आचरण व योग-तप-तितिक्षा के पथ के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न तो शास्त्रोक्त है और न ही व्यावहारिक।

आत्मकल्याण कोई जुआ या लॉटरी नहीं है, जो किसी को तीर-तुक्के से मिल जाए—उसे प्राप्त करने के लिए शुभाचरण व शुद्ध चिंतन के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

यों लिखने-पढ़ने में, लोक-प्रचलन में अनेकानेक उपासना-विधियों का वर्णन है, पर यदि ध्यान से देखा जाए तो उन सबके मूल में भावना एक ही है कि मनुष्य सद्भावनाओं को अपनाए, सच्चरित्र बने व सदाचरण करते हुए स्वयं के व्यक्तित्व का परिष्कार करे।

साधना का पथ कोई-सा भी अपनाया जाए, कर्मकांडों की दृष्टि से कैसे भी पथ को अपनाया गया हो—बिना उत्कृष्ट चरित्र-निष्ठा के कोई भी आत्मिक प्रगति संभव नहीं हो पाती। जब तक व्यक्तित्व को अच्छी तरह से परिष्कृत करने का प्रयत्न नहीं किया जाता, तब तक समस्त बाहरी प्रयास गौण ही बने रहते हैं।

गायत्री तंत्र में इसी सत्य को ध्यान में रखते हुए कहा गया है कि

आत्मशुद्धि बिना कर्तुर्जयहोमादिकाः क्रियाः।
निष्फलास्तास्तु विज्ञेयाः कारणं श्रुतिनोदितम्॥

अर्थात बिना आत्मशुद्धि के जप, होम आदि समस्त कर्मकांड निष्फल हो जाते हैं, ऐसा शास्त्रकारों का मत है।

सामान्य क्रम में जप-पूजा करते समय, व्यक्तित्व के परिष्कार के महत्त्वपूर्ण चिंतन की ओर हमारा ध्यान नहीं जा पाता। एक निश्चित संख्या में जाप को करना आवश्यक है, परंतु उसके साथ ही भावों की शुद्धि भी उतना ही आवश्यक कर्म है।

कई बार तो निश्चित आवृत्ति में जप करना एक स्वचालित प्रक्रिया की तरह बन जाता है और उसके पीछे निहित परमात्मा को पुकार के भाव लुप्त हो जाते हैं। फिर हम जप-पूजा को भी दैनिक दिनचर्या के अन्य कार्यों की तरह करते हैं और मन को निर्मल करने का भाव धीरे-धीरे विदा हो जाता है।

कहते हैं कि एक बार अनेकों लोग संत तुकाराम के पास इस आशय से पहुँचे कि उनके नेतृत्व में वे तीर्थयात्रा को चल सकें। संत तुकाराम ने उनसे कहा—"मित्रो! मेरे लिए दुर्भाग्य से इस तीर्थयात्रा

पर जा पाना संभव नहीं है, परंतु आप मेरे प्रतिनिधि के रूप में कद्दू को ले जाइए। जिस-जिस तीर्थ पर आप स्नान करें, वहाँ पर इस कद्दू को भी स्नान कराइएगा।'' लोगों को उनका यह प्रस्ताव विचित्र तो लगा, पर संत तुकाराम को मना करने का साहस उनमें न था। उन्होंने उनका दिया कद्दू ले लिया व प्रत्येक तीर्थ में उसे स्नान भी कराया।

लौटने पर संत तुकाराम ने उनसे पूछा—''भाइयो! आपने मेरे कद्दू को तीर्थ स्नान कराया था या नहीं?'' उत्तर 'हाँ' में मिलने पर वे बोले—''आप लोग आज शाम मेरे यहाँ भोजन करने जरूर आइएगा। आप लोगों को भोजन कराने से तृप्त अनुभव करूँगा।'' शाम को उन्होंने व्यंजन बनवाए, परंतु उनमें से एक सब्जी, जो कद्दू की थी, अत्यंत कड़वी थी।

लोगों ने पूछा—''महाराज! शेष भोजन तो बहुत स्वादिष्ट है, परंतु ये सब्जी बहुत कड़वी है, ऐसा क्यों?'' संत बोले—''भाइयो! ये वही कद्दू है, जो आप लोग तीर्थयात्रा पर ले गए थे। इतने तीर्थों का जल ग्रहण करने पर तो इसे शुद्धतम हो जाना चाहिए था, पर ऐसा नहीं हुआ, क्यों?'' फिर उन्होंने स्वतः ही उत्तर दिया—''मात्र बाहर की सफाई मनुष्य को पवित्र नहीं करती, अंदर से पवित्र भावों को अपनाना जरूरी होता है।''

इसी प्रकार आत्मकल्याण के लिए मन-विचार-भावों की शुद्धता व पवित्रता अनिवार्य हो जाती है। बिना वैसा किए, बाहर से करे गए प्रयास मात्र आडंबर बनकर रह जाते हैं व उनका कोई शुभ व स्थायी परिणाम नहीं आ पाता। इसीलिए महर्षि पतंजलि योग की परिभाषा चित्त की वृत्तियों के निरोध (**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः**) के रूप में करते हैं; क्योंकि बिना चित्त की शुद्धि के कोई भी स्थायी परिणाम नहीं आ पाता।

इसलिए महाभारत में महर्षि वेदव्यास ने कहा है—

अवैरा ये त्वनायासा मैत्रीचित्तरताः सदा।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

जो मन से किसी से वैर नहीं करते, जिनके हृदय में सदा सबके लिए मित्रता का भाव रहता है, जो सदा सब प्राणियों पर दया करते हैं, वे ही स्वर्ग के अधिकारी बनते हैं।

सार रूप में ये ही कहा जा सकता है कि आत्मकल्याण के लिए व्यक्तित्व के परिमार्जन की साधना करना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य के जीवन की अंतिम परिणति जीवन के सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना ही है और उस शिखर को उपलब्ध होने के लिए आंतरिक परिष्कार का पथ अपनाना ही श्रेयस्कर है।

बाह्य आडंबर थोड़े समय के लिए लोक-लुभावन का कार्य कर सकते हैं, परंतु उनके द्वारा स्थायी परिवर्तन ला पाना संभव नहीं हो पाता है। ऐसा कर पाना तो मात्र आत्मनिरीक्षण, पुनरावलोकन, अपने जीवन की निष्पक्ष समीक्षा, अपने व्यक्तित्व में सतत सुधार कर पाने से ही संभव है और वही पथ हमें सदा-सर्वदा अपनाना चाहिए। ☐

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥ —*कठोपनिषद् 1/2/24*

अर्थात जो मनुष्य निषिद्ध कर्मों से विरत नहीं है, जिसने अपनी इंद्रियों को जीता नहीं है, जिसका मन एकाग्र नहीं है, जिसका चित्त शांत नहीं हुआ है—उसको आत्मसाक्षात्कार कभी नहीं होता।

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

युग-परिवर्तन निश्चित होगा

बच्चो! मेरे स्थूल रूप में, कार्य तुम्हीं को करना है।
शक्ति हमारी सतत मिलेगी, उत्साह नहीं कम करना है॥

अश्वमेध आगे भी होंगे, भारत और विदेशों में,
प्रखर प्रेरणा तुम्हें मिलेगी, मेरे शुभ संदेशों में,
परिवर्तन होगा निश्चित ही, मिलकर आगे बढ़ना है।
शक्ति हमारी सतत मिलेगी, उत्साह नहीं कम करना है॥

यज्ञ और संस्कार बढ़ाकर, नर रत्नों को तैयार करें,
कन्या-कौशल शिविर लगाकर, नारी का उद्धार करें,
गर्भोत्सव संस्कार मनाकर, संस्कारवानों को गढ़ना है।
शक्ति हमारी सतत मिलेगी, उत्साह नहीं कम करना है॥

जन्म दिवस-विवाह दिवस को, श्रद्धा सहित मनाएँ हम,
अखण्ड ज्योति के पाठक-साधक, ग्राहक और बढ़ाएँ हम,
अखण्ड दीप की जन्मशताब्दी, की तैयारी करना है।
शक्ति हमारी सतत मिलेगी, उत्साह नहीं कम करना है॥

मिशन बढ़ेगा जोर-शोर से, युवको! आगे बढ़कर आओ,
करो प्रशिक्षण शांतिकुंज में, समयदान करने आओ,
महाकाल के संकेतों पर, हम सबको अब चलना है।
शक्ति हमारी सतत मिलेगी, उत्साह नहीं कम करना है॥

—विष्णु शर्मा 'कुमार'

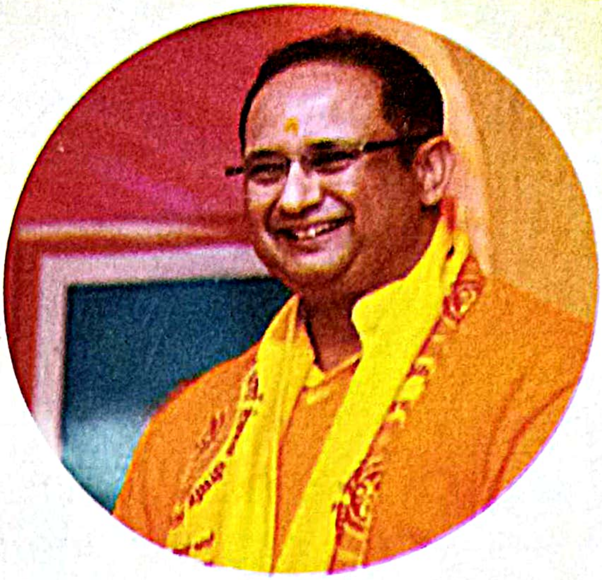

अंतरराष्ट्रीय जनकल्याण हेतु शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु तर्पण फाउंडेशन द्वारा प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय आदरणीय डॉ. चिन्मय पण्ड्या जी को विवेकानंद अंतरराष्ट्रीय संबंध (वीआईआर) शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-09-2024
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय की पावन उपस्थिति में जबलपुर(मध्य प्रदेश) में तरुरोपण महायज्ञ का भव्य आयोजन

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org